कवि और क्रांतिकारी

संपादक
सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का २०६वाँ पुष्प

कवि और क्रांतिकारी

[भारत की स्वाधीनता के बाद की समस्याओं पर
लिखा गया मौलिक उपन्यास]

लेखक
ठाकुर श्रीनाथसिंह
(भूतपूर्व संपादक सरस्वती, बालसखा, हल, देशदूत
और वर्तमान संपादक दीदी)

—:*:—

मिलने का पता—
गंगा ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

प्रथम बार] सं० २०१३ वि० [मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

1. भारती (भाषा)-भवन, ३८१०, चर्खेवालाँ, दिल्ली
2. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
3. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा बाजार, लखनऊ
4. वेस्टर्न बुकडिपो, रेजिडेंसी रोड, नागपुर—१
5. गंगा-गृह, फूल-निवास, अजमेर

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइन आर्ट-प्रेस
लखनऊ

समर्पण

बहन सावित्री दुलारेलाल को,
जो सही अर्थों में कवि हैं,
और क्रांतिकारी भी।

भूमिका

आधुनिक युग में सबसे बड़े कवि हुए हैं श्री रवींद्रनाथ ठाकुर, और सबसे बड़े क्रांतिकारी हुए हैं महात्मा गांधी। यह उपन्यास लिखते समय ये दोनों पूज्य महापुरुष चंद्र और सूर्य के समान मेरे कल्पना-गगन में विहरते रहे हैं। परंतु तो भी इस उपन्यास में मैं इनके-जैसे किसी पात्र की सृष्टि नहीं कर सका। इस उपन्यास में यह कमी है।

जब मैंने लेखनी उठाई, तब कवि के रूप में मेरे सामने आए रसिकेंद्र और शोभादेवी, जो किसी भी कवि-सम्मेलन में देखे जा सकते हैं, और क्रांतिकारी के रूप में आए नंदलाल और कुमारी आनंदमयी, जो भारत के स्वाधीन होने से पूर्व ब्रिटिश अधिकारियों पर पिस्तौल चलाया करते थे। और, इन्हीं के संगी-साथी आए। उनमें से बहुतों से समाचार-पत्रों के पाठक परिचित हैं।

बचपन से ही इन कवियों और क्रांतिकारियों से मैं इतना घिरा रहा हूँ कि इस उपन्यास के पात्रों का चुनाव करते समय लाख चेष्टाएँ करने पर भी मैं इनकी उपेक्षा नहीं कर सका। जैसे किसी स्टेशन पर रेलगाड़ी के खड़े होने पर किसी एक डिब्बे में अनायास बहुत-से अवांछनीय लोग घुस आते हैं, बस वैसे ही मेरे इस उपन्यास में भी ये पात्र बल-पूर्वक अपना स्थान जमा बैठे हैं।

अपने इन प्रिय पात्रों में से किसी का मज़ाक उड़ाना, किसी को उठाना अथवा किसी को गिराना मेरा ध्येय नहीं है। मैंने पूर्ण सहानुभूति के साथ उन सबका यथार्थ चित्रण करने की चेष्टा की है।

इस प्रकार यह उपन्यास अनायास एक ऐसा दर्पण बन गया है, जिसमें आधुनिक युग के कवि अथवा क्रांतिकारी अपनी आकृति और वेश-भूषा देख सकते हैं, और चाहें, तो इसके सहारे उसे आकर्षक और प्रिय भी बना सकते हैं। इसके साथ ही पाठक भी आधुनिक कवियों और क्रांतिकारियों का कुछ परिचय पा सकते हैं, और यथार्थ जीवन में भेंट होने पर उन्हें पहचान सकते हैं।

मैं सोचता हूँ, इस दृष्टि से यह उपन्यास सर्वथा सफल हुआ है, और इससे निश्चय ही पाठकों का मनोरंजन होगा, साथ ही काव्य क्या है? अथवा क्रांति क्या है? इस पर वे विचार कर सकेंगे। यही कारण है, किसी महान् पात्र की सृष्टि न कर सकने पर भी मैं निराश नहीं हूँ, और प्रेम से इस उपन्यास को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यहाँ मैं यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि इस उपन्यास के समस्त पात्र मेरी कल्पना-मात्र हैं, और प्रत्यक्ष जगत् के किसी जीवित व्यक्ति से उनका कोई संबंध नहीं है।

दीदी-कार्यालय
इलाहाबाद
१३-६-५६

श्रीनाथसिंह

(१)

यह एक बहुत बड़ा आघात था, जो कुमारी आनंदमयी के हृदय को लगा था। जिस पुरुष को कल शाम तक उसने अपना समझ रक्खा था, वह आज पराया हो गया था। जहाँ तक उसका प्रश्न था, उसे लगा कि प्रलय-काल उपस्थित है। जीवन उसे अत्यंत कटु और मृत्यु उसे परम मधुर प्रतीत हो उठी।

तर्क की ज्वाला उसके विषाद को भस्म न कर सकी। धैर्य की शिला उसकी इच्छा को दबा न सकी। लोक-लज्जा की समस्त शृंखलाओं को तोड़कर वह अपने घर से निकल पड़ी। हलके बसंती रंग की साड़ी के ऊपर गहरे काले रंग के ओवरकोट की

जेब में कई गोलियों से भरी पिस्तौल छिपाए वह उन्मादिनी-सी चली जा रही थी ।

उसे वे दिन याद आ रहे थे, जब चाँदनी रातों में वह और नंदलाल गंगा के कगारों और बालुका के विशाल भीटों की आड़ में अन्य क्रांतिकारियों के साथ पिस्तौल चलाने का अभ्यास किया करते थे। वहीं दोनो के हृदयों में प्रेम का उदय हुआ था, और अपनी अंजलियों में गंगा-जल लेकर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि भारत को स्वाधीन करने की सशस्त्र क्रांति के बाद यदि वे जीवित बचे, तो वैवाहिक सूत्र में बँधकर अपने प्रेम को अमर बनावेंगे। अब भारत स्वाधीन हो गया था, परंतु नंदलाल ने अपने पिता के दबाव में आकर अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था। यह आनंदमयी को असह्य हो उठा था।

जेब में वह हाथ डाले हुए थी, और पिस्तौल को बीच-बीच में टटोल लेती थी कि वह है या नहीं। कभी अपने ही आप वह कह उठती थी—"नंदलाल ने मुझे धोखा दिया। पर मेरी प्यारी पिस्तौल, तू मुझे धोखा न देगी।"

वह नंदलाल के घर के रास्ते पर थी, वह नंदलाल, जिसे उसने अपना समझा था, सूरज शीतल हो सकता है, चंद्रमा अंगार बन सकता है, पर नंदलाल उसके प्रति किए अपने वादों से विमुख नहीं हो सकता, ऐसा उसका विश्वास था। आज इसी विश्वास को धक्का लगा था—गहरा धक्का। और, इसीलिये आज वह नंदलाल को मारकर स्वयं मरने के लिये उतावली हो रही थी।

नंदलाल प्रयाग में फाफामऊ-पुल के पास, गंगा-तट पर बने अपने विशाल बँगले के हाते में घूम रहा था। उसकी अवस्था २२ वर्ष से कुछ कम ही थी, पर इस समय कुछ अधिक प्रतीत हो रही थी। हाल ही में उसकी शादी हुई थी, और बहू घर में आ गई थी। पर वह सुखी नहीं प्रतीत हो रहा था। सिर नीचा किए वह ऐसे टहल रहा था कि जान पड़ता था, जैसे वह पृथ्वी में कोई दरार ढूँढ़ रहा है कि पावे, तो उसमें समा जाय। बात यह थी कि यह विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध हुआ था। वह कुमारी आनंदमयी को अपना हृदय दे चुका था, और यद्यपि वह एक पत्र में यह सब लिखकर अपने पिता को दे चुका था, तथापि उन्हें अपने पक्ष में राज़ी न कर सका। हाँ, इसका यह परिणाम अवश्य हुआ कि उसके पिता सर शांतिस्वरूप ने, जो प्रयाग के एक प्रमुख रईस हैं, उसका विवाह तुरंत ही कर डाला, उसे सोचने और किसी निर्णय पर पहुँचने का अवसर ही न दिया।

वह सोच ही रहा था कि कुमारी आनंदमयी से भेंट होगी, तो क्या कहेगा कि उसके कानों में परिचित स्वर गूँज उठा—
"वहाँ क्या कर रहे हैं, जरा बाहर तो आइए।"

नंदलाल ने देखा फाटक के पास आनंदमयी खड़ी है, गौर वर्ण, लाल होंठ, कजरारे, विशाल नेत्र कुछ तनी हुई-सी श्याम भृकुटियाँ। काले ओवरकोट के बटन खुले हुए थे, और उसके अंदर उस हल्के रंग की बसंती साड़ी में वह ऐसी प्रस्फुटित हो रही थी, मानो काला नाग अपनी मणि उगल रहा हो।

नंदलाल आक्रांत हो उठा। उसकी समझ में न आया कि क्या कहे, क्या न कहे। तब आनंदमयी स्वयं फाटक के अंदर घुसी, और उसके पास आई। जेब से उसने एक पत्र निकाला, और नंदलाल को देकर कहा—"इसे आपने लिखा है ?"

नंदलाल आनंदमयी के हाथ से पत्र लेकर इस तरह पढ़ने लगा, जैसे कोई गूढ़ बात लिखी हो, और समझ में न आ रही हो। आनंदमयी ने पुनः जेब में हाथ डाला, और कई गोलियों से भरी उस पिस्तौल को मज़बूती से पकड़ा।

नंदलाल को लगा कि बैठे-बिठाए उसने आफ़त मोल ले ली। विवाह के पूरे एक महीने बाद उसने आनंदमयी को लिखा था—"आनंद, मुझे भूल जाओ, मैं अब दूसरे का हो गया। मैं तुम्हें भुलाने की चेष्टा करूँगा।"

यह तो वह सोचता था कि इस पत्र को पाकर आनंदमयी बहुत दुखी होगी, परंतु यह बात उसने स्वप्न में भी न सोची थी कि पत्र पाते ही आनंदमयी उसके सामने आ खड़ी होगी, और उससे जवाब तलब करेगी। यद्यपि यह उसी की लिखावट थी, और उसने बहुत सोच-समझकर लिखा था, तथापि वह पत्र की ओर इस तरह देख रहा था, जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति हो, और पढ़ने का ढोंग कर रहा हो।

प्रातःकाल की पावन बेला थी। गंगा-स्नान करनेवाले स्त्री-पुरुष उधर आ-जा रहे थे। वह स्थान इस प्रकार के गंभीर विवाद के उपयुक्त न था।

नंदलाल ने कहा—"सब बताऊँगा, अंदर आइए।"

सर शांतिस्वरूप नहीं चाहते थे कि आनंदमयी उनके बँगले में आए, और उनके बेटे से मिले। अतएव उन्होंने बड़े अशिष्ट ढंग से एक दिन उसे टोका था, और तब से वह न आई थी। आज भी वह बँगले के अंदर पैर नहीं रखना चाहती थी, पर आज उसका उन्मादी मन उसे अंदर घसीट ले गया। उसने मन ही-मन कहा—"चलो, आज उस बुड्ढे खूसट से भी निपटूँगी।" और नंदलाल के पीछे हो ली।

नंदलाल उसे अपने निजी कमरे में ले गया। पहले भी वह कई बार आ चुकी थी, परंतु तब वह एक क्वाँरे पुरुष का कमरा था—सब चीज़ें अस्त-व्यस्त। अब वह कमरा सर्वथा भिन्न था। नंदलाल ने कमरे की दीवार पर सिनेमा की अभिनेत्रियों के चित्र टाँग रक्खे थे। अब वे कोई चित्र न थे। दीवारें सूनी थीं। केवल एक चित्र था, सर शांतिस्वरूप का, और उसे ताज़े गुलाब के फूलों की एक माला पहनाई गई थी। कमरे में पूरे फ़र्श के नाप की एक दरी बिछी थी, जिस पर एक ओर एक पलंग बिछा था, और दूसरी ओर एक क़तार में तीन कुर्सियाँ रक्खी थीं, जो पलंग से कुछ नीची थीं। बीच में एक छोटी-सी मेज़ थी, और जिस पर मौसमी फूलों का एक गुलदस्ता रक्खा था। पलंग के सिरहाने की तरफ़ एक दूसरी मेज़ थी। जिस पर क़लम-दवात और कुछ लिखने का कागज़ रक्खा था। कुर्सियों के एक तरफ़ दो छोटी-छोटी अलमारियाँ थीं, जिनमें एक में किताबें

और दूसरी में जो मेज़नुमा थी, ऊपर रेडियो-सेट रक्खा था, और नीचे का खाना बंद था, शायद उसमें जूते आदि थे ।

आनंदमयी को कमरे की सजावट सुरुचि-पूर्ण जान पड़ी, और उसे लगा कि इसमें आनेवाली नई बहू का कुछ हाथ अवश्य है। यह सब देखकर उसे लगा कि सर शांतिस्वरूप अपने बेटे के लिये जीवन-सहचरी उतना नहीं चाहते थे, जितना अपने घर के लिये एक नौकरानी चाहते थे । हो सकता है, अपने इरादे में सफल हुए हों, क्योंकि मैं यह सब न कर सकती । पर यह तो ध्रुव सत्य है कि उन्होंने यह शादी करके मेरा ही नहीं, अपने बेटे का भी जीवन चौपट कर डाला है । पर ख़ैर, अब इन बातों में क्या रक्खा है ? उसने फिर जेब में हाथ डाला, और पिस्तौल को मज़बूती से पकड़ा ।

"बैठिए ।" नंदलाल ने कंपित स्वर में कहा, और वह अपने पिता के चित्र की ओर देखने लगा ।

"मैं यहाँ बैठने नहीं आई हूँ । मैं तुमसे पूछने आई हूँ कि तुमने यह शादी क्यों की ?"

नंदलाल कोई उत्तर न दे सका । मौन खड़ा रहा । "बोलो ।" आनंदमयी ने गरजकर कहा ।

"मेरे हृदय की स्वामिनी अब भी तुम हो ।" नंदलाल ने कहने की चेष्टा की ।

"आदमी की पहचान बातों से नहीं, उसके कामों से होती है, नंदलाल ! तुम्हारे काम क्या कहते हैं ?"

"बहुत-से काम होते हैं, जिन्हें मनुष्य चाहता नहीं है, तब भी उसे करने पड़ते हैं।"

ऐसे कायरता-पूर्ण तर्क सुनने का मुझे अभ्यास नहीं है।" आनंदमयी ने दृढ़ता के साथ कहा—"मैं स्पष्ट उत्तर चाहती हूँ। तुम इस विवाह के लिये क्यों राज़ी हुए ?"

"तुम मेरे स्थान पर होतीं, तो क्या करतीं ?"

"किसी से झूठा वादा न करती। तुम्हें याद है, इसी गंगा की रेत पर उस दिन चाँदनी रात में तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी ?"

"याद है, और मैं कहता हूँ कि मेरे हृदय की स्वामिनी तुम हो।"

"और, वह जो दूसरी स्त्री ब्याह कर लाए हो, वह तुम्हारी किस वस्तु की स्वामिनी है ?"

"वह मेरे शरीर की स्वामिनी हो सकती है, हृदय की नहीं।"

"अच्छा, तो शरीर उसको दो, और हृदय मेरे हवाले करो।"

कुमारी आनंदमयी ने जेब से पिस्तौल निकाल ली।

नंदलाल डरा नहीं। शांत भाव से जहाँ-का-तहाँ खड़ा रहा—"अगर मेरे प्रणों का अंत होने से तुम्हें शांति मिलेगी, तो अवश्य कर दो।"

"अवश्य करूँगी तुम्हारे भी प्राणों का अंत और अपने भी प्राणों का अंत, और देखूँगी की तुम्हारा वह मूर्ख पिता हमारे-तुम्हारे रक्त को एक में मिलकर बहने से कैसे रोक सकता है।"

"मारो, मैं तैयार हूँ।" नंदलाल ने कहा, और उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

सहसा एक मज़बूत हाथ ने आनंदमयी की कलाई को इस ज़ोर से पकड़ लिया कि वह कुछ घबरा-सी गई। वह पिस्तौल चलावे, इसके पहले ही पिस्तौल उसके हाथ से छिन गई।

नंदलाल की नवविवाहिता पत्नी दोनो के बीच में खड़ी थी, और आनंदमयी के कानों में बहुत ही धीमे स्वर में कह रही थी—"कौन है री तू! मेरे स्वामी का प्राण लेने का इरादा रखनेवाली?"

आनंदमयी उस दिशा की ओर देख रही थी, जिधर से यह स्त्री आई थी। नंदलाल के कमरे से मिला हुआ एक कमरा था। दोनो के बीच में एक चिक पड़ी हुई थी। संभवतः यह स्त्री चिक की आड़ से सब देख और सुन रही थी, और एकाएक इधर फट पड़ी।

आनंदमयी ने अत्यंत क्रोध और घृणा-मिश्रित स्वर में कहा—"जानती हूँ, बराबर चक्की चलाते-चलाते तेरे हाथ बहुत मजबूत हो गए हैं।"

"घबरा मत, जब जेलख़ाने जायगी, तब तुझे और भी भारी चक्की चलाने को मिलेगी। तब तेरे हाथ भी ऐसे ही मजबूत हो जायँगे।"

सहसा बाहर से आवाज़ आई—"श्रीमान्‌जी, मैं अंदर आ सकता हूँ?"

"कौन ?" नंदलाल ने अपने को संयत करते हुए कहा।

"मैं हूँ कविवर रसिकेंद्र।"

"अंदर जाओ।" उन्होंने अपनी पत्नी की ओर संकेत करते हुए कहा। पत्नी कुमारी आनंदमयी की पिस्तौल लिए और उसे घसीटती हुई अंदर जाने लगी।

"नंदलाल, अपनी स्त्री को रोको।"

"छोड़ो उन्हें।" नंदलाल ने आज्ञा के स्वर में कहा।

पत्नी आनंदमयी को छोड़कर, पर उसकी पिस्तौल लिए हुए अंदर भागी।

"बैठिए।" नंदलाल ने अत्यंत विनीत भाव से कहा।

उसका यह मृदु व्यवहार आनंदमयी को जले पर नमक के समान लगा। उसकी आँखों में आँसू छलछला आए। उन्हें दबाने की चेष्टा करते हुए वह बैठ गई।

"श्रीमान्‌जी, मैं कविवर रसिकेंद्र आऊँ ?"

"पधारिए।" नंदलाल ने कहा।

वर्षों का रक्खा चूड़ीदार पाजामा पहने, झींगुरों के आक्रमणों से बहुत कुछ बची हुई रेशमी शेरवानी धारण किए, रीवाँ-नरेश द्वारा प्रदत्त भड़कीला साफ़ा बाँधे, काम-चलाऊ मरम्मत और गहरी पॉलिश के बाद पुराना बूट डाटे, होठों को पान और आँखों को सुरमे से रँगे लगभग ४० वर्षीय कवि रसिकेंद्र ने प्रवेश किया। "आपने तो मेरा नाम सुना होगा। कवि-सम्मेलनों में मैं जाता रहता हूँ, और समाचार-पत्रों में भी मेरी रचनाएँ छपती रहती हैं।"

"हाँ, सुना है, पर दर्शन का सौभाग्य आज मिला।"

"यह लीजिए, आपके पिताजी का पत्र है।"

नंदलाल ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—"पत्रवाहक कविवर रसिकेंद्र को भेज रहा हूँ। यह बहूरानी को कविता लिखना सिखावेंगे।"

"अच्छी बात है।" नंदलाल ने कहा—"आपसे तो परिचित हैं न ?—आनंदमयीजी, उदीयमान कवयित्री।"

"हाँ, आपकी रचनाएँ दो-एक कवि-सम्मेलनों में सुनी हैं। आप साक्षात् सरस्वती हैं। आप धन्य हैं कि आपको ऐसी काव्य-माधुरी प्रवाहित करनेवाली पत्नी मिली हैं।"

"यह अभी कुमारी हैं।" नंदलाल ने कविवर रसिकेंद्र की भूल को सुधारते हुए कहा।

"अच्छा, तो यह आपकी बहन हैं। देवीजी, मुझे क्षमा करें, ग़लत समझ बैठने के लिये। मेरा प्रस्ताव है कि अपनी भाभी के साथ आप भी कविता सीखें। माना कि आप अच्छा लिखती हैं, पर अभी संशोधन की आवश्यकता है।"

"रसिकेंद्र ! होश में रहकर बात करो। मैं अभी तुम्हें दस बरस कविता पढ़ा सकती हूँ।"

रसिकेंद्र जल उठा। आनंदमयी पर कटु व्यंग्य कसते हुए वह बोला—"स्त्री का सौंदर्य कवि की लेखनी को गति देता है। पर पहले तो आपका सौंदर्य ऐसा नहीं कि मेरी लेखनी को डिगा सके। दूसरे, आप दस वर्ष तक अपना यह यौवन स्थिर रख सकेंगी,

इसमें मुझे संदेह है। अधिक-से-अधिक मैं आप पर तीन छंद बना सकता हूँ।"

"और मैं आपको प्रत्येक छंद पर कम-से-कम तीन तमाचे प्रदान कर सकती हूँ।"

सहसा एक नौकरानी कमरे में उपस्थित होती है। "बहूरानी आपको बुला रही हैं।"

"मुझे!" रसिकेंद्र ने उत्सुकता के साथ पूछा। "जी आपको।"

"चलो। सर शांतिस्वरूप की मुझ पर बड़ी कृपा है। अपमान की वैतरणी तैरकर आना पड़े, तो भी उनकी बहू को मैं कविता सिखाने को तैयार हूँ।"

आनंदमयी कुछ न बोली कि किसी प्रकार यह बला टले। रसिकेंद्र दूसरे कमरे में चला गया, तब वह बोली—"नंदलाल, हम-तुम एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। देखो, अभी अच्छा है। अपने पिता से स्पष्ट कह दो कि मैं इस गँवार औरत को पत्नी-रूप में कदापि स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। तुम उनसे दृढ़ता के साथ कहो तो।"

"कहूँगा।"

"कब?"

"अच्छा, मुझे एक सप्ताह का अवसर और दो। मैं हिम्मत करके कहूँगा। अगर उन्होंने आज्ञा न दी, तो प्राण दे दूँगा।"

"ईश्वर तुम्हें प्रेम की इस कसौटी पर खरा उतारे। अच्छा, तो मैं जाती हूँ। मुझसे कब, कहाँ मिलोगे?"

"जब, जहाँ कहो ?"

"मैं चिट्ठी भेजूँगी। मेरी पिस्तौल ?"

"मैं भिजवा दूँगा।"

आनंदमयी उठी। कमरे के बाहर चली गई।

वह टेढ़े-टेढ़े, कटीले रास्ते से गंगा-तट की ओर जाने लगी। उसका हृदय जैसे कह रहा था कि उसे जीवन-भर अब इसी प्रकार कंटकमय पथ पर चलना पड़ेगा। बाहर का स्वच्छ समीरण और दूर तक फैला हुआ गंगा का बालुकामय रजत-अंचल देखकर उसका चित्त कुछ शांत हुआ।

"यह अच्छा ही हुआ कि उस गँवार स्त्री ने अपने शारीरिक बल के सहारे दुर्घटना बचा ली। पर दो प्रेमियों के वियोगी हृदयों में उठनेवाली अग्नि की लपटों से वह अपने को बचा सकेगी, इसमें संदेह है।" इस प्रकार मन-ही-मन सोचती हुई वह गंगा की रेत पर जा पहुँची—"यह धारा हिमालय-जैसे अटल पर्वतराज की छाती दो टूक करके बाहर निकली है। हमारा प्रेम भी इसी प्रकार प्रवाहित होगा। सर शांतिस्वरूप ! निर्दयी, अवि-वेकी पिता ! तुम उसे रोक न सकोगे।"

चिंतिता, पराजिता, दुखी और निराश उस अबला ने गंगा के पवित्र जल को अपनी अंजलि से लेकर अपने सिर पर छिड़का—"मातेश्वरी, मेरी मनोकामना पूर्ण करो।"

---

(२)

इलाहाबाद की दर्शनीय वस्तुओं में महारानी विक्टोरिया की संगमरमर की विशालकाय मूर्ति भी है, जो कंपनी बाग़ में स्थापित है। इस मूर्ति के पश्चिम एक गोल चबूतरा है, जिस पर अँगरेजों के शासन-काल में सैनिक बैंड बजा करता था। इस चबूतरे पर उन दिनों की स्मृति-स्वरूप लोहे की टूटी-फूटी बेंचें आज दिन भी पड़ी हुई हैं।

इन्हीं बेंचों में से एक पर बैठा हुआ रसिकेंद्र गंभीर चिंतन में लीन था। सहसा घोड़े की टापों की ध्वनि ने उसका ध्यान भंग किया। क्या देखता है कि एक मानव-आकृति, जिसे वह पुरुष

भी कह सकता था और स्त्री भी, घोड़े पर सवार है, और घोड़ा मध्यम चाल से चबूतरे के गिर्द वृत्ताकार सड़क पर चक्कर लगा रहा है।

उसने ध्यान से उस आकृति की ओर देखा। चेहरा कुछ पहचाना हुआ-सा प्रतीत हुआ। परंतु वह ठीक निश्चय न कर सका कि कौन है। सहसा उसे ये शब्द सुनाई पड़े—"कविवर रसिकेंद्रजी, नमस्कार ! जरा इधर तो आइए।"

"आवाज़ तो स्त्री की-सी है।" रसिकेंद्र ने मन-ही-मन कहा—"पर मैं इसे पहचानता क्यों नहीं हूँ, जब कि यह मुझे पहचानती है, और बुला रही है ?"

"क्षमा कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना नहीं।" रसिकेंद्र ने क़रीब जाकर कहा।"

"मेरा नाम आनंदमयी है।"

"आनंदमयी ? महान् कवयित्री, जिसके दर्शनों का सौभाग्य मुझे उस दिन श्रीनंदलाल के निवास पर हुआ था ?"

"हाँ।"

"ओफ़्, मेरी इन आँखों में एक साथ बीस सुइयाँ चुभें, जो आपको पहचान न सकीं। पर इनका भी क्या अपराध ? स्त्री को पुरुष-वेश में देखने का इनका यह पहला ही अवसर है।"

"पुरुष-वेश ! क्या कहते हैं, रसिकेंद्रजी ! यह तो स्त्री की सहज पोशाक है। यह देखिए सलवार।" उसने अपना एक पैर रसिकेंद्र के सिर की ओर बढ़ाया और रसिकेंद्र को कुछ पीछे हटना पड़ा।

"यह देखिए कुर्ता।" उसने अपनी दोनो बाँहों को घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे इस तरह फैलाया, जैसे सरकस की कोई अभिनेत्री हो।

"और, यह देखिए चोटी।" उसने एक एँड़ लगाई, और घोड़ा इस तरह घूमा कि रसिकेंद्र को लगा कि वह उस पर दुलत्ती झाड़ देगा।

रसिकेंद्र बेचारा गिरते-गिरते बचा।

"परंतु नाक में कील कहाँ है? हाथों में चूड़ियाँ कहाँ हैं? कमर पर करधनी कहाँ है? और पाँवों में पायल कहाँ हैं?" रसिकेंद्र ने विनीत भाव से पूछा।

"और यह भी पूछिए कि मुख पर घूँघट कहाँ है? आनंदमयी ने व्यंग्य के स्वर में कहा।

"यह भी पूछ सकता था, अगर जानता कि आप कुमारी नहीं हैं। घूँघट का प्रश्न विवाह के बाद उठता है।"

"अच्छा, तो आपका सिद्धांत यह है कि जब विवाह हो जाय, तब स्त्री परदे में रहे।"

"जी नहीं, मुझे ग़लत न समझें। मैं परदे के ख़िलाफ़ हूँ। परंतु मैं घूँघट को परदा नहीं मानता, विवाहित स्त्री का एक आवश्यक शृंगार मानता हूँ।"

"धन्य है आपको! आज यहाँ मेरे स्थान पर झाँसी की रानी होतीं, तो शायद आप उनसे घूँघट काढ़ने को कहते?"

"जी नहीं, झाँसी की रानी विधवा थीं, और विधवा के लिये

घूँघट वैसे ही अनावश्यक है, जैसे खिंची तलवार के लिये म्यान।"

"धन्य है आपको! परंतु मेरे स्थान पर यदि सीता होतीं?"

"कौन सीता? महल-निवासिनी या तरुतल-वासिनी?"

"महल-निवासिनी?"

"वे शायद साधारण स्त्री की तरह इस प्रकार घोड़े पर सवार होकर न निकलतीं।"

"और अगर निकलतीं?"

"तो उनका घूँघट मीलों तक फैला होता! वह खिंची तलवारों और धनुष पर चढ़े तीरों का घूँघट होता।" रसिकेंद्र ने विजेता के-से स्वर में कहा।

परंतु आनंदमयी भी हार माननेवाली न थी। वह बोली—"और अगर आप की शिष्या अर्थात् मिसेज़ नंदलाल होतीं?"

रसिकेंद्र के माथे पर बल पड़ गया। वह सोचने लगा।

"सोचते क्या हैं, कविवर? मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

रसिकेंद्र ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। बोले—"जिस स्त्री को मैं घंटों से यहाँ बैठा भुलाने की चेष्टा कर रहा हूँ, उसका स्मरण दिलाकर आपने अच्छा नहीं किया।"

"कुछ समझी नहीं मैं। आप उस चुड़ैल को अभी कविता तो सिखा रहे हैं न?"

"उसे चुड़ैल न कहें, वह सौंदर्य की देवी है।"

"ज़रा मेरी ओर देखिए। मुझसे अधिक सुंदर है ?"

रसिकेंद्र इस प्रकार सिमटकर खड़ा हो गया, जैसे वह छुईमुई का पौदा हो, और उसे किसी ने छू दिया हो। उसकी इस भाव-भंगी पर आनंदमयी को कुछ क्रोध आ गया, तथापि अपने मनो-भाव को दबाती हुई वह बोली—"कविवर, यह मत समझिए कि मैं आपसे विवाह का प्रस्ताव करूँगी।"

"मुझसे आज तक किसी ने विवाह का प्रस्ताव नहीं किया।"

"उस चुड़ैल ने भी नहीं ?"

एक हल्की-सी मुस्कान रसिकेंद्र की गुप्त मनोव्यथा की चुग़ली कर बैठी। उसने लाख छिपाने की चेष्टा की, परंतु वह अपने मनोभावों को छिपा न सका।

वह बोला—"नंदलाल से वह निराश हो गई है, परंतु किसी हालत में उसे छोड़ना नहीं चाहती।"

"उसे छोड़ना ही पड़ेगा। वह नंदलाल का केवल शरीर पा सकती है, प्राण नहीं। तुम कवि हो, यह बात उसे अच्छी तरह समझा दो।"

"और सुनो।" आनंदमयी ने रसिकेंद्र को अपने क़रीब बुला-कर उसके कान में कहा—"तुम उसको अपने साथ विवाह करने के लिये राज़ी कर लो। उस दशा में मैं नंदलाल से दो-एक गाँव तुम्हें दिलवा दूँगी, और इस फटे-हाल कवि से तुम कवि-सम्राट् बन जाओगे। बोलो, स्वीकार है ?"

"आप जो भी आज्ञा दें, मुझे शिरोधार्य होगी। परंतु मेरे

लिये उसे राज़ी करना उतना ही कठिन है, जितना चींटी के बिल में हाथी ले जाना।"

"तुमने प्रयत्न किया?"

"जी, मैंने अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे एक लंबा प्रेम-पत्र लिखा, और काँपते हुए हाथों से उसे पढ़ने को दिया।"

"उसने पढ़ा?"

"जी, उसने एक-एक शब्द पढ़ा, फिर आँखों में अश्रु भरकर बोली—'आप मेरे गुरु हैं, अतएव पिता-तुल्य हैं। आज से मैं नित्य ही भगवान् से प्रार्थना करूँगी कि वह आपको बुद्धि दें।' यह कहते हुए उसने दियासलाई जलाई, और मेरे उस अति ललित छंदों में रचित प्रेम-पत्र को मेरे सामने ही जला डाला, और फिर बोली, जैसे मेरी सगी बेटी हो—'क्या मैं आशा करूँ कि आपके मन में जो विकार उठा था, वह इस काग़ज़ के साथ भस्म हो गया? यदि हाँ, तो यह घर आपका है, जब चाहें, पधारें। यदि नहीं, तो इसी दम यहाँ से निकल जायँ।'"

"और आप निकल आए?" आनंदमयी ने पूछा।

"नहीं, मैं चुपचाप किंकर्तव्य-विमूढ़-सा बैठा रहा। फिर उसी ने कहा—'इस समय जायँ। मैं आपको सोचने का मौक़ा देती हूँ, और कल आवें, तो सर्वथा विकार-रहित होकर आवें।'" रसिकेंद्र एक साँस में कह गया।

"तब आपने क्या सोचा?" आनंदमयी बोली।

"यहाँ बैठा मैं यही सोच रहा था कि आपने मेरा ध्यान भंग

कर दिया। मैं सोचता हूँ, मैं महान् अपराधी हूँ, और मेरे लिये संसार में कहीं ठौर नहीं है।"

"हूँ।" आनंदमयी बोली—"यह कायरता है। वही कायरता, जिसकी अर्जुन के हृदय में महाभारत के युद्ध के समय उत्पत्ति हुई थी। मैं आपसे कहूँगी कि इसको हृदय से निकाल दें, और आप मेरी सहायता करें, और मैं आपकी सहायता करूँगी। और आप जानते हैं, प्रयत्न करने से असंभव भी संभव हो जाता है।"

रसिकेंद्र ने आनंदमयी की ओर इस तरह देखा, जैसे जीवन से निराश रोगी आशा दिलानेवाले डॉक्टर की ओर देखता है। वह बोला—"मुझे लगता है कि मैं तुलसीदास के पथ पर हूँ। स्त्री की ओर से मुझे वैराग्य हो गया है।"

"स्त्री द्वारा ठुकराए जाने पर न! और अगर वह प्यार करे?"

"मैं स्वाभिमानी कवि हूँ। किसी स्त्री के सामने प्रेम का भिखारी होकर नहीं उपस्थित होना चाहता।"

"चाहे वह तुम्हारी शिष्या ही क्यों न हो?"

एक क्षीण मुस्कान रसिकेंद्र के चेहरे पर दौड़ गई। आनंदमयी ने रसिकेंद्र का हाथ पकड़कर अपने और क़रीब खींचा—"देखो, पागल मत बनो। जब तक वह अपने पति या श्वशुर से तुम्हारी शिकायत नहीं करती, तुम अपना प्रेम-अभिनय जारी रक्खो। नंदलाल तुम्हें कुछ कहेगा नहीं, इसका विश्वास मैं दिलाती हूँ, और अपने श्वशुर से वह कुछ कहने का साहस नहीं करेगी।"

रसिकेंद्र की दशा उस पक्षी की-सी हो गई, जिसे बहेलिया

अपने लासे में फँसाकर अपनी ओर खींचता है। वह उसके घोड़े से सटकर इस तरह खड़ा हो गया, जैसे उसकी पाँचवीं टाँग हो, और मन-ही-मन बिसूरने लगा—"एक यह स्त्री है, जो इतने स्नेह से मुझे अपने निकट खींच रही है, और एक वह है, जिसने मेरे प्रेम-पत्र को जला डाला! यह उससे किस बात में कम है? वह तो कविता का क ख ग भी नहीं जानती और यह पूर्ण कवयित्री है। हाय! मैं काच की चकाचौंध में कंचन को न पहचान सका।" कंपित स्वर में वह बोला—"आनंदमयी, तुम्हें पाकर मेरा कवि-जीवन सफल हुआ। मेरी पत्नी तुम हो सकती हो, केवल तुम, और कोई नहीं।"

"मूर्ख!" आनंदमयी ने रसिकेंद्र के गाल पर कसकर एक तमाचा लगाया—"मैंने तुमको वह स्नेह प्रदान करना चाहा था, जो एक बहन अपने भाई को प्रदान करती है, और तू उसमें वासना देखता है। जा, दूर हो यहाँ से।"

आनंदमयी ने अपने एक पैर से रसिकेंद्र के सिर पर एक जबर्दस्त ठोकर लगाई। वह दूर जा गिरा।

आनंदमयी ने घोड़े को बढ़ाया—"अभी तुझे इसकी टाँगों से कुचलवाती हूँ।"

रसिकेंद्र जमीन पर इस तरह पड़ा हुआ था, जैसे किसी बहुत ऊँचे पेड़ से गिरा हो, और उसमें उठने की शक्ति न रह गई हो। आनंदमयी को उस पर दया आई। बोली—"भाई रसिकेंद्र, बुरा मत मानो। मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही थी।"

"रसिकेंद्र की जान में जान आई। पर वह उठा नहीं। बोला—"मैं भी आपकी परीक्षा ले रहा था।"

"अच्छा मेरे भाई, उठो।"

"नहीं, अब नहीं उठूँगा।"

आनंदमयी घोड़े से उतरी। उसकी लगाम रेलिंग से बाँधकर आगे बढ़ी। बड़े स्नेह से उसने रसिकेंद्र को उठाया, और खींचकर चबूतरे पर ले आई। उसे एक बेंच पर बैठालकर बोली—"आज से तुम मेरे भाई हो। प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझे अपनी बहन समझोगे।"

"नहीं, मैं किसी का भाई नहीं बनना चाहता, और न किसी को अपनी बहन बनाना चाहता हूँ।"

"अच्छा, तुम क्या चाहते हो, मुझसे शादी करना चाहते हो?"

"नहीं, माफ़ कीजिए। आप ऐसी स्त्री नहीं कि कोई पुरुष आपसे शादी करके सुखी रह सके। भगवान् संसार के पुरुषों को आप-जैसी स्त्री से बचावें। सर शांतिस्वरूप ने अच्छा किया, जो नंदलाल की शादी अन्य स्त्री से कर दी।"

"अच्छा, मेरी चर्चा हो रही है।" नंदलाल ने उन्हें दूर ही से आवाज़ दी। वह भी घोड़े पर सवार था, और सैर को निकला था।

"मैं सोचता था, आप यहाँ ज़रूर मिलेंगी। और, मैं भूलता नहीं हूँ, तो यह कविवर रसिकेंद्रजी हैं। यह इधर कहाँ से आ निकले?"

आनंदमयी बड़े ज़ोर से खिलखिलाकर हँसी—"मैंने इन्हें पार्टी का मेंबर बना लिया है।"

रसिकेंद्र ने आनंदमयी की बात का खंडन न करना ही अच्छा समझा। जिस लज्जास्पद स्थिति में वह आ फँसे थे, उससे छुट-कारे की मानो यह एक सूरत निकल आई थी। वह इस तरह शांत भाव से बैठ गया, जैसे कोई महान् कवि हो। कम-से-कम नंदलाल पर वह कुछ ऐसा ही प्रभाव डालना चाहता था।

नंदलाल ने कहा—"रसिकेंद्र-जैसे उच्च चरित्रवान् कवि हमारी पार्टी के मेंबर हो जायँ, तो एक बार उनकी वाणी का अमृत-रस पिलाकर हम मुर्दों में भी जान डाल दें।"

अपने लिये उच्च और चरित्रवान्-जैसे विशेषण सुनकर रसिकेंद्र के रोंगटे खड़े हो गए।

नंदलाल बोला—"इतिहास बताता है कि जब और जहाँ कोई क्रांति सफल हुई है, तब और वहाँ एक और क्रांति की आव-श्यकता हुई है—क्रांतिकारियों के विरुद्ध क्रांति। आज भारत में भी वह घड़ी उपस्थित है। जिन लोगों ने अँगरेजों के विरुद्ध क्रांति की, और देश को उनसे मुक्त किया, आज वे सर्वथा बदल गए हैं। देश-कल्याण के लिये हमें उनके विरुद्ध क्रांति करनी ही पड़ेगी।"

"हमारी क्रांति तेहरी होगी—पारिवारिक, आर्थिक और राज-नीतिक।" आनंदमयी ने कहा।

"परंतु आप करेंगे कैसे ?" रसिकेंद्र ने पूछा।

"हम नई पार्टी खड़ी करेंगे, चुनाव लड़ेंगे, सर्वथा निर्दोष सरकार बनाएँगे।"

"पर कौन जाने कि आप भी अपने वादे भूल जायँ।" रसिकेंद्र ने कहा।

"यह दलील मैं मानता हूँ।" नंदलाल ने कहा—"अनेक लोग यह प्रश्न कर बैठते हैं। पर क्या इसी डर के मारे हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? सामने देखिए, विक्टोरिया की मूर्ति अब भी यहाँ ज्यों की-त्यों स्थित है। भारतवर्ष को स्वाधीन हुए पूरे तीन वर्ष हो गए, पर इन तीन वर्षों में अँगरेजों की सत्ता और भारतीयों की गुलामी की प्रतीक इस मूर्ति को भी हमारी राष्ट्रीय सरकार यहाँ से नहीं हटा सकी। अँगरेजी शासन-काल में यहाँ पुलिस का पहरा रहता था कि कोई इस मूर्ति को बिगाड़ न दे। आज उसकी भी आवश्यकता नहीं रही। महारानी विक्टोरिया अब तुम भारत में खद्दर-धारियों की बदौलत अनंत काल तक जमी रहो; और आजाद! हमारे प्यारे क्रांतिकारी, जो इसी पार्क में अँगरेजों की गोली के निशाने बने थे, तुम अब भी धूल में छिपे पड़े रहो। तुम्हें हम भूल जायँगे, और रानी विक्टोरिया, तुम्हें हम स्मरण रक्खेंगे। हाय री हमारी मनोदशा! क्या से क्या हो गई है।"

"हम मूर्ति-रक्षक हैं, मुसलमानों की तरह मूर्ति विनाशक नहीं।" रसिकेंद्र ने कहा—"विक्टोरिया की मूर्ति हमारा क्या बिगाड़ती है? इतिहास के एक पृष्ठ की तरह हमारे सामने

खुली पड़ी है। इतिहास के इस पृष्ठ को फाड़कर हम अपना ही अहित करेंगे।"

"इतिहास का पृष्ठ यह रहे, हमें इसमें आपत्ति नहीं। परंतु इसका स्थान अब कोई बंद म्यूज़ियम होना चाहिए, यह खुला बाग़ नहीं।"

"और यहाँ आज़ाद की मूर्ति स्थापित होनी चाहिए।" आनंदमयी ने कहा।

"होगी।" नंदलाल बोला—"विधि ने हमें इसीलिये विवाह के बंधन में बँधने से रोका कि हमें अभी एक क्रांति और करनी है।"

"और सुलोचना से क्या आपने विवाह नहीं किया ?" रसिकेंद्र ने पूछा।

"आपने पढ़ा होगा, सीता की अनुपस्थित में जब राम को यज्ञ करना पड़ा, और उसमें पत्नी की उपस्थिति आवश्यक प्रतीत हुई, तब उन्होंने दूसरा ब्याह नहीं किया। सीता की सोने की एक मूर्ति बनवा ली। सुलोचना मेरे लिये वैसी ही सोने की मूर्ति है, वास्तविक सीता नहीं।"

"हूँ।" रसिकेंद्र ने देखा, आनंदमयी गर्व से ऐंठी जा रही है।

"चलो।" उसने कहा, और सब उठ पड़े। आनंदमयी और नंदलाल, दोनो अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गए, और इस तरह सरपट दौड़ाते निकल गए, जैसे गंधर्वों का एक जोड़ा हो।

रसिकेंद्र फिर अपनी जगह पर बैठ गया। "हे भगवान् !"

उन्होंने मन-ही-मन कहना आरंभ किया—"सुलोचना मेरे विषय में क्या सोचती होगी ? और यह चुड़ैल आनंदमयी ? इसने मुझसे अच्छा बदला लिया। हाय ! यह चरित्रहीनता मुझमें कहाँ से आ गई। आज के कवियों की रचना पढ़कर जनता चरित्र-हीन न बने, तो क्या हो ?"

इधर जो-जो घटनाएँ घटी थीं, सब उसके सामने सिनेमा के चल-चित्रों के समान घूम गईं। उसने एक दीर्घ निःश्वास ली, और कहा—"सुलोचना, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम ही मेरी गुरु हो, जिसने जीवन में प्रथम बार मुझे पतन के गर्त से निकाला है। मैं तुम्हारी इस कृपा का बदला चुकाऊँगा। मैं तुम्हारी जगह इस आनंदमयी को, जो पुरुषों के हृदय से इस प्रकार खिलवाड़ करती है, कदापि न लेने दूँगा, कदापि नहीं।"

यह निश्चय कर लेने के बाद उसके मानस-पट पर लज्जा, ग्लानि, पराजय और पश्चात्ताप की जो बदली छा गई थी, वह जैसे छिन्न-भिन्न हो गई, और वह सुलोचना को कविता सिखाने चल पड़ा। अभी वैसी देर भी नहीं हुई थी।

---

(३)

रात्रि के मौन अंधकार को मुखरित करती हुई जनता-एक्सप्रेस पटना-स्टेशन को बहुत पीछे छोड़ आई है। लंबी यात्रा की थकान और परेशानी से शिथिल, निद्रित ठूसमठूस भरे यात्री डिब्बों में इस तरह बेसुध पड़े हैं, जैसे यमराज उन्हें सशरीर दूसरे लोक में लिए जा रहे हों। हर डिब्बे में मृत्यु-तुल्य शांति विराज रही है।

इन्हीं डिब्बों में से एक में हमारे सुपरिचित कथा-पात्र नंदलाल, सुलोचना, आनंदमयी और रसिकेंद्र भी शिथिल-तन, सुप्त-मन कलकत्ता जा रहे हैं। पटना तक ये बैठे-बैठे झपकी लेते आए थे। वहाँ काफ़ी यात्री उतरे, जिससे गाड़ी कुछ ख़ाली हुई, और इन्हें

कुछ-कुछ शरीर सीधा करके सोने का अवसर मिला । आइए पाठक, देखें, वे कहाँ किस अवस्था में हैं। पर हाँ, देखिए, उनकी निद्रा भंग न होने पावे।

एंजिन के बाद पहला डिब्बा—आदमी पर आदमी लुढ़के पड़े हैं। मैले-कुचैले वस्त्र, टूटी-फूटी संदूकें, धोतियों और चादरों में बँधी, जीवित लाशों-सी दो-तीन, स्त्रियाँ । इनमें कोई कवि नज़र नहीं आता।

दूसरा डिब्बा—शहरी, देहाती, अमीर, ग़रीब, खुले सिर, बुरक़े से ढकी, बूढ़ी, जवान, अधेड़ स्त्रियाँ वैसे ही सामानों के ऊबड़-खाबड़ ढेर में खोई-सी। इनमें भी कोई कवि नज़र नहीं आता।

एंजिन के बाद तीसरा डिब्बा—अहा हा, वह रहे कविवर रसिकेंद्र, रीवाँ-नरेश द्वारा प्रदत्त भड़कीला साफ़ा बँधा-बँधाया सिर से उतारकर, दो संदूक़ों के बीच में अपना विंध्याचली सोंटा खड़ा दबाकर उस पर टाँग दिया है । गहरी नवीन पॉलिश से और भी मनहूस बना पुराना बूट पैरों में अब भी कसा पड़ा है, जैसे कोई घोड़ा इक्के में जुता-जुता सो रहा हो । झींगुरों के आक्रमण से बहुत कुछ बची हुई रेशमी शेरवानी बाक़ायदे तहा-कर एक पोटली के ऊपर सिरहाने रक्खी हुई है । दोनो बर्थों के बीच में रक्खी हुई संदूकों और बिस्तरों को तीसरी बर्थ बनाकर लंबे, दुबले-पतले शरीर में चूड़ीदार पाजामा डाटे वह इस तरह पीठ के बल लेटा है, जैसे गंगा की फेनिल बाढ़ में कोई मुर्दा बहा जा रहा हो।

रसिकेंद्र के सिरहाने की ओर, दूसरी पंक्ति में, प्रथम श्रेणी के यात्री की-सी दो चौड़ी संदूकें एक पर रक्खी हैं। उनके ऊपर एक बिस्तर रक्खा है। बिस्तर-बंद पर एक साल का छोटा-सा लड़का सोया है, जो उसी में बाँध दिया गया है। शायद इसलिये कि नीचे न लुढ़क पड़े। इसी ओर एक बर्थ पर सफ़ेद चद्दर से ढके और लिपटे बिस्तर-बंद पर नंदलाल खुर्राटे ले रहा है। स्वस्थ शरीर, गौर वर्ण, सुचिक्कन मुख, चौड़े ललाट से साफ़ पहचाना जाता है। दूसरी बर्थ पर सिर से पैर तक बहुमूल्य चादर से ढकी कोई स्त्री सोई-सी प्रतीत होती है। अनुमान लगाया आपने, यह कौन हो सकती है ? यह सुलोचना है। रसिकेंद्र बाईं करवट सो रहा है। उसका मुँह सुलोचना की ओर है, पर ज़रा ध्यान से देखिए, तो उसकी बंद आँखें भी सुलोचना से दूर, सामने की ओर, ऊपर की बर्थ पर, लगी हैं। ओ हो, वह आनंदमयी है। आधुनिक भारतीय नारी, श्वेत सलवार, दुपट्टा, कुर्ता धारण किए, काले, घने केशों की दो लंबी नागिनें लटकाए, जो जैसे रसिकेंद्र को डसने उतरी आ रही हों, ओठों पर लिपस्टिक जमी, जैसे कंचन के कंदुक पर दो मूँगे जड़े हों, जैसे कोई स्वर्ग की परी आकाश-मार्ग से उड़ी जा रही हो।

और भी कई लोग इधर-उधर पड़े नज़र आ रहे हैं, जो यात्री भी हो सकते हैं और कवि भी।

'झन्न !' अरे, यह क्या ? कविवर रसिकेंद्र के कंधे पर से होता हुआ उसकी छाती पर एक बहुमूल्य भड़कीली साड़ी में लिपटा

एक युवती का पैर आ गिरा है। पैर में महीन चाँदी के तारों की पायल पड़ी है, जो उसके तलवों और उँगलियों को और भी कमनीय बना रही है। संभवतः यह भी कोई कवयित्री है। यह रसिकेंद्र के बराबरवाली सीट पर उसके सिर से पैर सटाए सो रही थी। जाग्रत् अवस्था में उसे रसिकेंद्र का ज्ञान था, परंतु सुप्तावस्था में उसे इस बात का ध्यान न रहा, और पैर सीधा किया, तो रसिकेंद्र की छाती पर आ गिरा। पायल की मधुर ध्वनि से समूचा डिब्बा जैसे मधुर संगीत से भर गया। सुप्त कवियों के मानस-पट पर स्वप्न के सुनहले चित्र अंकित हो उठेंगे, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं। रसिकेंद्र ने आँखें खोल दीं। आइए पाठक, इसी डिब्बे में हम भी अपनी कल्पना की सीट पर आसन लगावें, और देखें कि अब क्या होता है।

रसिकेंद्र साड़ी से बाहर निकले अबला के उस सुअलंकृत कोमल पग को बड़े ध्यान से देखता रहा। इतने निकट से इतनी सुंदर रमणी की पग-छवि उसने इससे पहले कभी न देखी थी। जब उसने अच्छी तरह निश्चय कर लिया कि जो कुछ वह देख रहा है, स्वप्न नहीं, सत्य है, तब मन-ही-मन इस प्रकार कल्पना करने लगा—

"क्षीर सागर में शेष की शय्या पर सोए भगवान् विष्णु! तुम्हें आज मेरे सौभाग्य पर ईर्ष्या हो रही होगी। तुम्हारी छाती में ब्राह्मण ने लात मारी थी, जिससे तुम बड़े पुलकित हुए थे। परंतु यह देखो, मेरी छाती में अबला ने लात मारी

है। दीनता में यह ब्राह्मण से भी दीन और बल में ब्राह्मण से भी बली। मैं कहा करता था कि कवि ब्रह्मा से बढ़कर होते हैं, क्योंकि ब्रह्मा की सृष्टि में षट् रस होते हैं, परंतु कवि की सृष्टि में नव रस। आज मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इस घटना पर मैं एक महाकाव्य लिखूँगा, और कलकत्ते के कवि-सम्मेलन में, जहाँ आज हम सब जा रहे हैं, उसकी भूमिका अवश्य सुनाऊँगा।"

रसिकेंद्र सोचता गया—"यह स्त्री कौन हो सकती है? कोई नववधू तो नहीं है कि प्रथम बार ससुराल जा रही हो, और निद्रा में सावधान रहना अभी इसने न सीखा हो। या हो सकता है, यह कोई प्रौढ़ महिला हो, और जान-बूझकर मेरी छाती पर पैर धरा हो, मेरी परीक्षा लेने के लिये। या शायद कोई कवयित्री हो, और यह भी कलकत्ते जाने के लिये मार्ग में कहीं सवार हुई हो। हे भगवान्, यह त्रिया-चरित्र तो तुमने मुझे बहुत सुंदर दिखलाया, परंतु मुझ पुरुष के भाग्य भी तो उदित करो।"

सहसा रसिकेंद्र का ध्यान भंग हुआ। देखा नंदलाल और सुलोचना के बर्थों के बीचवाली जगह से कोई यात्री उठकर खड़ा है, और जैसे उस पैर को पकड़ने के लिये झुक रहा है।

रसिकेंद्र को अपने दाल-भात में मूसरचंद बननेवाले इस यात्री पर बड़ा क्रोध आया, पर उसे दबाते हुए उसी प्रकार लेटे-ही लेटे उसे प्रणाम किया, और उँगलियाँ मटकाकर

उसकी ओर संकेत किया, जिसका अर्थ यह था कि बोलो मत, केवल अपने कान मेरे मुख के क़रीब लाओ। यात्री ने तत्काल इस मौन संकेत का पालन किया। रसिकेंद्र ने अति क्षीण स्वर में कहा—"महाशय, इन्हें सोने दीजिए। मैं कवि हूँ। मेरी छाती विशाल है। यह बनी ही इसलिये है कि कोई सौंदर्य की देवी अपने चरण-स्पर्श से इसे सिंचित करे। आप मेरी चिंता न करें। पर हाँ, आपको मेरे सौभाग्य से ईर्ष्या हो रही हो, और आप चाहते हों कि मैं उठ जाऊँ, और यहाँ आकर आप लेटें, तो कलकत्ते तक तो यह महा असंभव है, क्योंकि मैंने अपने 'प्रमदा-पग'-नामक महाकाव्य की रचना प्रारंभ कर दी है। कृपया विघ्न न उपस्थित करें।"

"बड़ा बदतमीज है।" उस व्यक्ति ने रसिकेंद्र के कान में कहा, और हट आया, रसिकेंद्र ने जैसे कुछ सुना ही न हो। वह अपने ध्यान में पुनः लीन हो गया।

उस व्यक्ति ने देखा कि जो बालक रसिकेंद्र के सिरहाने संदूकों पर धरे बिस्तर पर सोया है, उसे जैसे सर्दी लग रही है। उसने धड़ाधड़ दौड़ी जाती हुई रेल के उस डिब्बे में चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई। कोई ऐसा वस्त्र रसिकेंद्र की पुरानी शेरवानी के अतिरिक्त न दिखाई दिया, जिसे वह बच्चे को उढ़ा सके। सो उसने रसिकेंद्र की शेरवानी से बच्चे को ढक दिया, और आप अपनी जगह पर जाकर फिर लेट रहा।

यद्यपि उसने यह सब बड़ी सावधानी से किया, तथापि

वह स्त्री जग गई। उसे वस्तु-स्थिति का ज्ञान हुआ, तो उठकर बैठ गई। बैठी, तो देखा कि रसिकेंद्र जग रहे हैं, और उनकी आँखें उसे निगल जाने को इस तरह खुली हैं, जैसे रेल के निकल जाने के लिये किसी पहाड़ के आर-पार कोई सुरंग निकल गई हो। वह मुस्किरा उठी। रसिकेंद्र को लगा, जैसे उसकी उमड़ती हुई कल्पना की मेघमाला में बिजली चमक उठी। वह भी उठकर बैठ गया।

"अगर मैं भूलती नहीं हूँ, तो आप कविवर रसिकेंद्र हैं।" उस स्त्री ने कहा।

"जी और आप।"

"मैं शोभा हूँ।"

"अहा हा ! महान् कवयित्री शोभा। एक साथ बीस सुइयाँ चुभें मेरी इन आँखों में, जो आपको पहचान न सकीं।" रसिकेंद्र कहने लगा—"मैं सोचता था, आप पटना में जरूर इसी गाड़ी पर चढ़ेंगी। फ़र्स्ट क्लास का किराया मँगवाकर थर्ड क्लास में यात्रा करनेवाले हम कवियों को इस जनता-एक्सप्रेस ने बदनामी से बचा लिया है।"

"जी नहीं, इरादा तो मेरा फ़र्स्ट क्लास में ही जाने का था। परंतु जैसे ही टिकट ख़रीदा, डाक-गाड़ी छूट गई।"

"कोई बात नहीं, आपको हमें दर्शन जो देना था। पर टिकट का दाम तो वापस मिल गया न ?"

"कहाँ, जल्दी में दूसरा टिकट ख़रीद न सकी।"

"तो, यह कहिए कि आप विना टिकट चल रही हैं।"

"और आप ? शोभा चूकनेवाली न थी।"

"खैर !" रसिकेंद्र ने पूछा—"आपके पैर कहीं झुलस तो नहीं गए, मेरी छाती पर पड़े-पड़े ? बड़ी ज्वाला भरी है इसके अंदर।"

"होगी, मुझे तो लगा कि पाँव बर्फ़ पर पड़ा है, ज़रा भी गर्माहट न आई।" शोभा बोली।

"ठीक कहती हो शोभा ! मैंने अपने मन की उमंगों को संयम की शिला के नीचे दबा रक्खा है।"

"बनो मत मुझसे, सुलोचना को तुमने जो पत्र लिखा था, उसे मुझे न दिखाया होता, तो तुम्हारी बात मानती भी।"

"बस-बस," रसिकेंद्र ने शोभा के होठों पर अपना हाथ धर दिया—"वह भी इसी गाड़ी से चल रही है।"

"कैसे बदतमीज़ हो तुम, मेरी सारी लिपिस्टिक पोंछ ली।"

रसिकेंद्र ने अपना हाथ देखा। बोला—"सुनो, मैं तुम्हें ब्रज-भाषा का एक छंद सुनाता हूँ।"

"सुनाओ।"

भोरहि न्योति गई ती तुम्हें वह
गोकुल-गाँव की ग्वालिन गोरी।

"तुम्हारा मतलब समझ गई।" शोभा बोली—"अब यही कहना चाहते हो न कि—

आवे हँसी हमें देखत लालन,
भाल में दीन्हों महावर घोरी।

परंतु ईश्वर को धन्यवाद दो कि मेरे पैर में महावर नहीं लगा है, नहीं तो तुम्हारी गत बन जाती।"

"हाँ, परंतु यह लिपिस्टिक महावर से भी भयानक है। इसमें महावर, मेंहदी, पान, बिंदी, माँग का सिंदूर, सब अस्त्र निहित हैं। आधुनिक नारी के हाथ में यह आटम बम है।" रसिकेंद्र ने कहा।

"परंतु तुम्हें इससे क्या डर। तुम्हारे घर में कौन स्वकीया बैठी है, जो तुमसे जवाब तलब करेगी।"

"क्या बकवास लगा रक्खा है?" ऊपर की बर्थ पर से लेटे-लेटे आनंदमयी ने डाँटकर कहा--"सोने दो, अभी बहुत रात है।" उसने अपने ठीक नीचे बैठी शोभा को नहीं देखा था।

"अच्छा, कुमारी आनंदमयीजी हैं!" शोभा ने उठते हुए कहा—"नमस्कार बहन, अब तो कवि-सम्मेलन में बहुत मजा आवेगा।"

"कवि-सम्मेलन नहीं, पशु-सम्मेलन कहो, जिसमें रसिकेंद्र और तुम्हारे—जैसे कवि चल रहे हैं, जो कामुकता-पूर्ण वर्णनों को ही कविता समझते हैं। उसे पशु-सम्मेलन ही कहना अधिक सार्थक होगा।"

"और आप तो दूध की धोई हैं?" शोभा बोली।

"मैं नाबदान का कीड़ा सही, पर एक बात में मैं तुम सबसे अच्छी हूँ। मैं गंदी तुकबंदी नहीं करती। मैं साहित्य के द्वारा जनता में नए विचार पैदा करना चाहती हूँ। उसमें नया

जीवन, नया उत्साह पैदा करना चाहती हूँ। यह न कर सकूँ, तो लेखनी को चूल्हे में फेंक दूँगी।"

"हाँ, इससे ईंधन की कुछ समस्या तो हल होगी।" नंदलाल ने आँखें मलते हुए कहा—"मैं तो चाहता हूँ कि लेखनी ही नहीं, लेखनी-समेत जितने कवि हैं, वे सब चूल्हे में झोंक दिए जायँ। कवि-सम्मेलनों के नाम पर इस समय देश में बहुत बड़ी बदतमीजी हो रही है।"

"कवियों और कवि-सम्मेलनों से ऐसी घृणा है, तो आप कलकत्ते क्यों चल रहे हैं, महाशय!" शोभा ने पूछा।

"यह इनसे पूछिए, अपनी छोटी, बड़ी या मझली, जो समझिए, दीदी से, यहाँ जो इस बर्थ पर लेटी हैं।" "कौन हैं वह?" शोभा बोली।

"मिसेज नंदलालजी।" आनंदमयी ने व्यंग्य के स्वर में कहा।

"मिसेज नंदलाल।" शोभा ने नंदलाल की ओर और फिर कुमारी आनंदमयी की ओर देखा। मुस्किराई—"क्या यह भी कवि हैं?"

"जी।" नंदलाल बोला।

"भगवान् इनका भला करें, जिन्होंने ऐसा अरसिक पति पाया है।"

आनंदमयी खिलखिलाकर हँस पड़ी। दो संदूकों के ऊपर बिस्तरे पर लेटा बच्चा रो उठा। सबका ध्यान उधर गया।

"हाय ! इसे मेरी शेरवानी किसने उढ़ा दी है।" रसिकेंद्र ने उसे बच्चे के ऊपर से उठाते हुए कहा।

"देखिए महाशय, यह पानी कैसा टपका रहे हैं।" बग़ल में लुढ़का एक यात्री चिल्लाया।

"पानी !" रसिकेंद्र ने शेरवानी को खोलते हुए कहा—"ओफ़्, इसमें तो बच्चे ने पेशाब कर दिया है।" दूसरी तरफ़ देखने पर—"अरे राम ! इसने तो पाख़ाना भी कर दिया है। किसका बच्चा है यह।" रसिकेंद्र क्रोध के स्वर में बोला। किसी ने कोई उत्तर न दिया।

रसिकेंद्र ने बच्चे को उठा लिया। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। रसिकेंद्र ने चिल्लाकर कहा—"किसका बच्चा है यह, बोलो, कोई बोलता है, नहीं तो इसे ट्रेन के बाहर फेंक दूँगा।"

शोभा मुस्किरा रही थी। रसिकेंद्र ने कहा—"शोभा रानी, तुम्हें तो हँसी छूट रही है, और मेरी शेरवानी सत्यानास हो गई। फेंकता हूँ, इसे अभी।"

वह आदमी, जो नंदलाल की बर्थ के नीचे लेटा था, उठा और बच्चे को रसिकेंद्र के हाथ से लेकर उसे चुप कराने लगा।

"तुमने इसे मेरी शेरवानी क्यों उढ़ाई ?" रसिकेंद्र ने उससे जवाब तलब किया।

शेरवानी का भीगा छोर उस यात्री के मुख से छू गया, जिसने पहले रसिकेंद्र को टोका था।

"बड़ा शेरवानीवाला बना है, मेहतर कहीं का ! सारे डिब्बे में पेशाब चुआ रहा है।" वह बोला।

"याद रक्खो, मैं आशु कवि हूँ ! ऐसा छंद बनाऊँगा कि तुम्हारे सात पुरखे रसातल चले जायँगे।" रसिकेंद्र ने अपनी आवाज़ बुलंद की।

नंदलाल ठहाका मारकर हँस पड़ा।

"यह व्यक्ति पागल है क्या महाशय !" वह यात्री बोला।

"जी, कवि पागल तो होता ही है।" नंदलाल ने कहा।

"जी, मैं नहीं जानता था," कहता हुआ वह फिर सोने का उपक्रम करने लगा।

"अब कहाँ सोने का समय है, यह लीजिए, हावड़ा आ गया।" एक यात्री बोला, जो बड़ी देर से खिड़की की ओर से बाहर झाँक रहा था।

सुलोचना, जो पड़ी-पड़ी सब बातें सुन रही थी, उठ बैठी। उसने अपने वस्त्रों को समेटा, अपना बिस्तर बाँधा। फिर इशारे से अपनी ख़ाली सीट पर नंदलाल को बैठाकर उसके वस्त्रों को समेटा, और उसके बिस्तर को बाँधा।

शोभा अपने एक साल के शिशु को लेकर खड़ी हो गई और वह आदमी, जिसने अपने आपको शोभा के बच्चे का पिता घोषित किया था, अपना और उसका बिस्तर समेटने लगा। नंदलाल ने आनंदमयी की सहायता की। कविवर रसिकेंद्र ने महाराज रीवाँ-प्रदत्त अपने बँधे साफ़े को सिर पर रक्खा, और

विंध्याचली सोंटे में शिशु के मल-मूत्र से सनी शेरवानी भरे हुए साँप की तरह लटकाकर उतरने को तैयार हो गए। रेल की तमसावृत नीरवता विद्युत् के अगणित बल्बों के चमचमाते हुए कोलाहल में बदल गई। जनता हावड़ा-स्टेशन पर आ खड़ी हुई थी।

बाहर कवियों को कलकत्ता ले जाने के लिये सुसज्जित कारें खड़ी थीं। सब कवि क्रमशः उस पर बैठाए गए। एक पर सोंटे पर शेरवानी लटकाए राजकवि रसिकेंद्रजी बैठे। उनके दर्शन को कलकत्ते की काव्य-प्रेमी जनता उमड़ पड़ी।

मालूम हुआ कि आज ही बारह बजे दिन से कवि-सम्मेलन होगा। हाय ? क्या इतने समय में कवि की यह शेरवानी धुल-कर सूख सकेगी।

(४)

कलकत्ता नरक और स्वर्ग, दोनो ही है। यह रहनेवालों के ऊपर है कि चाहे वहाँ नारकीय जीवन व्यतीत करें, चाहे स्वर्गीय।

भारत के विभिन्न भागों से आए हुए एक से-एक बढ़कर कवि चितरंजन एवेन्यू की विशाल अट्टालिकाओं के बीच बनी हुई एक धर्मशाला में ठहराए गए। इमारत की भव्यता को छोड़कर और सब बातों में यह धर्मशाला वैसी ही थी, जैसी भारतवर्ष की अन्य सब धर्मशालाएँ हैं। कोनों पर मकड़ियों का जाल, फ़र्श पर गर्द, बरामदों में जूठी पत्तलें और फलों के छिलके आदि।

एक कमरे में सुलोचना और नंदलाल के बड़े-बड़े बक्स और

बिस्तर-बंद डाल दिए गए। दूसरे को आनंदमयी ने केवल अपने लिये रिज़र्व कराया। तीसरे में कवयित्री शोभा अपने शिशु और शिशु के उस संरक्षक के साथ, जिसे लोग शोभा का पति समझते थे और नौकर भी, विराजमान हुई।

धर्मशाले में एक बड़ा हॉल था, उसमें बीसियों कवि अपना-अपना बिस्तर बिछाए इस तरह पड़े हुए थे, जैसे किसी बैरक में क़ैदी सोए हों।

रसिकेंद्र को जब कोई उपयुक्त स्थान अपने ठहरने के लिये न दिखाई पड़ा, तब वह उच्च स्वर से कविता-पाठ करने लगा। हॉल में विश्राम करते हुए कवियों में से अधिकांश इस तरह बाहर निकल आए, जैसे क़ब्रस्तान से मुर्दे निकल आए हों। और, उनका परस्पर परिचय होने लगा।

मालूम हुआ कि दिल्ली से दानवजी, आगरे से चिनगारीदेवी, कानपुर से कपटीजी, बनारस से मेंढकजी, जबलपुर से ज्वालाजी, नागपुर से नागरजी, बंबई से बधिरजी, टीकमगढ़ से खबीसजी, पटना से पनालाजी और प्रयाग से रसिकेंद्रजी पधारे हैं। घूँघट-जी, पायलजी आदि और भी सैकड़ों कवि आए हैं, पर कहाँ तक नाम गिनावें।

यह चर्चा होने लगी कि आज का मैदान किसके हाथ रहेगा? चिनगारीदेवी ने कहा—"स्वर, अर्थ, संकेत में तो मुझसे कोई पार नहीं पा सकता, पर यहाँ तो टर्र-टर्र करनेवाले बाजी मार ले जाते हैं। सो मैदान मेंढकजी के हाथ रहेगा।"

मेंढकजी ने विजेता के स्वर में कहा—"मुझे अगर डर है, तो सिर्फ रसिकेंद्र से।"

"मेंढकजी, याद कीजिए, आपको मैं कितनी बार हरा चुका हूँ। पर यहाँ तो तुम्हें अपनी शिष्या से हरवाऊँगा।" रसिकेंद्र बोला।

"शिष्या ?" चिनगारीदेवी ने आश्चर्य के स्वर में पूछा—"कहाँ है वह ? मैं उनसे परिचय प्राप्त करना चाहती हूँ कि कवि-सम्मेलनों में स्त्रियों की संख्या कुछ और बढ़े।"

"आइए !" रसिकेंद्रजी चल पड़े।

सुलोचना का कमरा अंदर से बंद हो चुका था। बाहर नंदलाल खड़ा बिसूर रहा था कि क्या करें ? कहाँ जायँ ? उसे इशारे से आनंदमयी ने अपने कमरे में बुलाया। वह एक बिस्तर-बंद पर बैठी थी। सिर के बाल अस्त-व्यस्त हो रहे थे, आखों का कज्जल फैल गया था। होठों की लाली काली पड़ गई थी।

निर्वासिता नारी की तरह उसे बैठे हुए देखकर नंदलाल के हृदय में उसके प्रति गहरी सहानुभूति उमड़ आई। वह उसकी सहायता करने दौड़ा। परंतु किंकर्तव्य-विमूढ़ हो उठा। कमरे में जैसे वर्षों से झाड़ू तक न लगी थी।

"मुझसे तो यहाँ न रहा जायगा। सुलोचनादेवी को राजी करो, तो हम सब किसी होटल में चलकर ठहरें।"

"तुम्हीं प्रयत्न करो न ?" नंदलाल मुस्किराया।

"अच्छा।" आनंदमयी बाहर निकली। देखा, सुलोचना के कमरे के द्वार पर कविवर रसिकेंद्र भीड़ लगाए खड़े हैं।

"क्या बात है ?" आनंदमयी बोली।

"देवीजी ने पाँच मिनट रुकने के लिये कहा है।" रसिकेंद्र ने कहा—"मैं इन सब लोगों को उनसे परिचय कराने को बुला लाया हूँ। लीजिए, पहले आप ही से परिचय करा दूँ। यह हैं—मेंढकजी।"

"अच्छा, किस नाबदान से पधारे हैं ?"

"देखिए, आप हैं स्त्री, और मैं हूँ पुरुष ! मुझसे सोच-समझकर मजाक कीजिए।"

"आप पुरुष हैं ? यह आप क्या कह रहे हैं ?"

उधर से दौड़ी हुई शोभा आई। देखा कि मेंढकजी चूल्हे में पड़ी भीगी लकड़ी की तरह सुलग उठे हैं, और कुछ कहना ही चाहते हैं कि उसने उनके मुँह पर अपनी हथेली रख दी—"आप भी किससे बात कर रहे हैं। आइए मेरे कमरे में।"

"ओहो ! श्रीमती शोभा भी पधारी हैं।" मेंढकजी ने प्रसन्न होकर कहा—"ठहरिए, जरा रसिकेंद्र की चेली से परिचय कर लूँ।"

"हाँ, हाँ। सुलोचना, अरे बहन द्वार तो खोलो।"

"दो मिनट और रुकिए।"

"क्या शृंगार हो रहा है ?"

"शृंगार नहीं, गृह-कार्य।" मंद स्वर में सुलोचना बोली।

"ओह ! और मैंने समझा, कमरे को अंदर से बंद करके फाँसी लगानेवाली हैं।" आनंदमयी ने व्यंग्य किया।

"बहन, गृह-कार्य हम स्त्रियों के लिये फाँसी पर चढ़ने के ही समान है।" शोभा ने कहा।

सुलोचना ने दरवाजा खोल दिया—"पधारिए।"

सुलोचना ने सालों से मैले पड़े उस कमरे को झाड़-पोंछकर स्वच्छ बना लिया था। अपने और नंदलाल के बिछौनों को खोलकर बिस्तर-बंदों को द्वार की तरफ़ बिछा दिया था। कमरे के बीचोबीच में दोनो के बिस्तरों को जोड़कर बिछाया था, और ऊपर से सफ़ेद चादरें जमा दो थीं। संदूकों को दीवारों के सहारे रखकर तौलियों से ढक दिया था। इस तरह कि लोग उन पर भी बैठने की इच्छा करें। एक छोटी संदूक़ पर उसने नंदलाल का हजामत बनाने का सामान—सेफ्टी रेजर, ब्रुश, कंघा, आइना—सजाकर रख दिया था। दूसरी तरफ़ स्टोव, चाय के प्याले और तश्तरियाँ सजाकर रख दी गई थीं। एक कोने में जूते और चप्पलें सजाकर रख दी गई थीं। पूरब-पच्छिम की दीवारों में गड़ी दो कीलों में एक पतली डोरी बाँधकर उस पर अपनी दो-तीन साड़ियाँ पर्दे की तरह झुला दी थीं, और शेष सामान उनकी आड़ में कर दिया था, और उधर भी एक दरी बिछा दो थी।

धर्मशाले के उस कमरे को इस तरह उससे पहले शायद ही कभी किसी यात्री ने सँवारा-सजाया हो।

"जहाँ दो ही तीन दिन ठहरना हो, वहाँ भानमती की इस दूकान-सी फैलाने से क्या लाभ?" दरवाजे पर नंदलाल खड़ा बड़बड़ा रहा था—"चलो, हम सब लोग होटल में ठहरेंगे।"

"यहाँ तो हमसे न रहा जायगा।" आनंदमयी बोली।

सुलोचना ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर्दे की तरह भुलाई गई सड़ियों के पीछे चली गई।

वह सुसज्जित कमरा सबको जैसे अंदर आने के लिये आमंत्रित कर रहा था। अपना हजामत बनाने का सामान क़ायदे से सजाकर रक्खा हुआ देखा, तो नंदलाल को याद आया कि अभी हजामत बनानी बाक़ी है—सो वह इसी उद्देश्य से रक्खे गए लघु आसन पर बैठ गया।

"पानी ?" वह बोला, और फिर खुद ही कहा—"ओह ! इस प्याले में है। धन्यवाद !" और वह ब्रुश से अपने मुख पर साबुन लगाने लगा।

आनंदमयी उसके सामने तौलिए से ढकी संदूक़ पर बैठ गई, और मन-ही-मन बिसूरने लगी, "इस औरत के हाथ से नंदलाल को छीनना मुश्किल होगा। उँह, पर यह सब तो तीस-चालीस रुपए माहवार का नौकर भी कर सकता है। पुरुष स्त्री से केवल इतने ही सुख की आशा नहीं रखता।"

रसिकेंद्र और अन्य सब कवि बिछी चादरों पर बैठ गए, और सुलोचना की प्रशंसा करने लगे।

आनंदमयी के लिये यह असह्य हो उठा। वह सोचने लगी, कितने मूर्ख हैं ये सब। ये समझते हैं, स्त्री-जीवन की सार्थकता केवल अपने पति की नौकरानी बने रहने में है। पहले तो साहित्य से इस पति-शब्द को ही निर्वासित करना होगा। मित्र, सखा,

साथी, सजन, प्रिय, प्रियतम, प्रणयी, प्राण, प्राणधन, दूल्हा, वर कितने शब्द हैं। पर विवाहित पुरुष के लिये पति शब्द ही सबसे अधिक उपयुक्त माना गया। कितनी बड़ी जिहालत है। ओफ़्! वह उठी।

"अच्छा, तो नंदलाल! मैं होटल में जाती हूँ। मुझसे तो इन पशुओं के बीच में न रहा जायगा।"

"पशु किसे समझती हैं देवीजी आप ?" रसिकेंद्र ने कहा।

"चुप रहो जी!" आनंदमयी गुस्से से बोली, और जाने लगी।

"चलूँ, पहुँचा आऊँ।" नंदलाल ने ब्रुश को पानी में डुबोते हुए कहा।

"मैं अकेली जा सकती हूँ।" वह उठकर जाने लगी। उधर से स्वागताध्यक्ष सेठ हीरानंदजी पधारे—"नहीं देवीजी, आपको यहाँ असुविधा हो, तो हमारे घर चलें।" और उन्हें अपनी मोटर में बिठाकर ले जाने लगे।

शोभा दौड़ी हुई आई। "सेठजी, मेरे ठहरने के लिये भी कोई अच्छा प्रबंध कीजिए। यहाँ तो....।"

"आओ बहन, तुम भी आओ।"

शोभा भी मोटर में जा बैठी। वहाँ से इशारे से उसने अपने पति को बुलाया। वह बेचारा बच्चे को गोद में लेकर बढ़ा भी। परंतु रसिकेंद्र ने समझा कि शोभा इशारे से उन्हीं को बुला रही है, सो वह उससे भी पहले जाकर मोटर में सवार हो गए। रसिकेंद्र को सेठ की मोटर में सवार होते देखा, तो घूँघटजी

और पायलजी भी दौड़े चिल्लाते हुए—"शोभा से हमारा परिचय पुराना है।" और वे भी मोटर में घुस गए।

बेचारे सेठजी और उनका ड्राइवर नीचे ही खड़े रह गए। उनके पीछे खड़ा था शोभा का पति, नन्हें शिशु को लिए हुए। उस शिशु को देखा, तो रसिकेंद्र को अपनी शेरवानी याद आ गई। जिसे सूखने के लिये धोकर धर्मशाले में फैला दिया था। उतरते हैं, तो जगह जाती है, और नहीं उरतते, तो शेरवानी छूटी जाती है। उनका चेहरा ऐसा हो उठा, जैसे कोई रोगी मृत्यु से लड़ रहा हो।

"क्या सोच रहे हो रसिकेंद्र ? उतरते हो, या तुम्हें धक्का देकर उतारना पड़ेगा।" आनंदमयी ने घुड़ककर कहा।

"घूँघटजी को और पायलजी को जो कहना हो, साफ़-साफ़ उनका नाम लेकर कहें। अगर किसी के उतरने का सवाल है, तो सिर्फ़ इन्हीं दोनो के उतरने का है।"

"तुम तीनो उतरो।" आनंदमयी ने अपनी भृकुटी वक्र की। सेठजी डर गए। उन्होंने ड्राइवर के कान में कुछ कहा। वह आगे बढ़कर बोला—"देवीजी सबको उतरना पड़ेगा। क्योंकि मोटर चल नहीं सकती। इसका एंजिन बिगड़ गया है, दूसरी मोटर आ रही है।"

"पर जब तक वह न आवे, आप लोग इस पर बैठे रहें।" सेठजी ने कहा।

सब लोग उस पर बैठे रहे। कोई आधा घंटा बीत गया।

"कहाँ है तुम्हारी दूसरी मोटर ?" आनंदमयी गरजी।

"कवियों को कवि-सम्मेलन में छोड़ने गई है।" सेठजी ने कहा।

"कवि-सम्मेलन शुरू हो गया ?" रसिकेंद्र ने पूछा।

"हाँ।"

"हाय ! बड़ी देर हो रही है।" घूँघटजी और पायलजी एक साथ बोले।

"ऐसा करो।" सेठजी ने ड्राइवर से कहा—"चार-पाँच रिक्शे ले आओ। सब लोग उन पर चले चलेंगे।"

ड्राइवर दौड़कर रिक्शे लाया।

पहला रिक्शा खड़ा भी न होने पाया था कि रसिकेंद्र झपटकर उस पर सवार हो गया। दोनो तरफ़ से दबाते हुए घूँघटजी और पायलजी भी उसी पर जा बिराजे।

"हाय ! जान निकली जा रही।" रसिकेंद्र ने कहा।

सेठ साहब, एक रिक्शे पर तीन सवारी नहीं बैठ सकतीं। रिक्शावाला बोला।

"चलो, हम कवि हैं, कोई रोकेगा, तो छंद सुनाकर उसका मुँह बंद कर देंगे। घूँघटजी ने कहा।

"चलो, हम भी कवि हैं। ऐसा छंद-पाठ करते हुए चलेंगे कि पुलिसमैन तुम्हें टोकना भूल जायगा।" पायलजी ने कहा।

"जा बे जा। अब क्या डर है ?" सेठजी ने उसे ५) का नोट

निकालकर दिया, और उसके कान में बहुत धीरे से कहा—"जा, इन्हें हावड़ा-पुल के पार छोड़ आ।"

रिक्शेवाला तीनों कवियों को मुश्किल से खींचता हुआ हावड़ा-पुल की ओर बढ़ा। रसिकेंद्र ने अपने 'प्रमदा-नग'-नामक महाकाव्य का मंगलाचरण अपने दोनो साथियों को सुनाना शुरू किया, और उन दोनो ने जोर-जोर से वाह-वाह की रट लगा दी। रिक्शेवाले ने मन ही-मन सोचना शुरू किया—"हे भगवान्! मैं क्या जानता था कि सेठजी ने शराबी मेरे रिक्शे पर बैठा दिए हैं।" सिर नीचा किए, ५) के नोट को मजबूती से पकड़े कि कहीं ये छीन न लें, वह दौड़ा जा रहा था।

इधर जगह खाली देखी, तो सेठजी ने शोभा के पति को उसके शिशु के समेत मोटरकार में बैठाया, स्वयं भी बैठे और ड्राइवर से कहा—"स्टार्ट कर।"

आनंदमयी ने कहा—"सेठजी, आपने उन तीनों कवियों को अच्छा बेवकूफ बनाया।"

"जी, कलकत्ते में कारबार चालू रखने के लिये यह सब कुछ करना पड़ता है।" सेठजी बोले।

"ओह!" शोभा इतना ही कहकर रह गई!

सेठजी की विशाल कोठी में ये दोनो कवयित्रियाँ बड़े सुख से रहीं। प्रतिष्ठा में कमी न हो, इस उद्देश्य से शोभा अपने पति को पुत्र समेत धर्मशाले में भेज दिया।

कवि-सम्मेलन बड़ी रात तक चलता रहा। परंतु रसिकेंद्रजी,

घूँघटजी और पायलजी उसमें भाग लेने से वंचित रहे। ये तीनों कलकत्ता में इस तरह भटक गए थे, जैसे वन में तीन बालक भटक गए हों।

पहले तो ये शोर मचाते हुए, कविता गाते हुए, रास्ता चलने-वालों को चौंकाते हुए चले जा रहे थे। परंतु जब रिक्शा हावड़ा के पुल पर पहुँचा, तब रसिकेंद्र का माथा ठनका। वह जोर-जोर से अपना 'प्रमदा-पग'-महाकाव्य सुनाता हुआ चला आ रहा था। वह सोच रहा था कि पीछे दूसरे रिक्शे पर आनंदमयी और शोभा भी उसे सुनती चली आ रही हैं। उसने पीछे घूमकर देखा, कहीं कोई न था, तब उन्होंने रिक्शावाले से कहा—"भाई, कहाँ चल रहे हो ?"

"पुल के पार।"

"उसके बाद ?" घूँघट कवि ने पूछा।

"उसके बाद जहाँ आप कहें ?"

"तय हुआ था कि तुम हमें सेठजी के घर तक ले चलोगे ?"

"सेठजी का घर मैं नहीं जानता ?"

"बदमाश! रिक्शा वापस ले चलो। हमें सेठजी के घर जाना है।"

"५) यहाँ तक के हुए। ५) आप और आगे दें, तो मैं वापस चल सकता हूँ।"

"मैं इस कवि-सम्मेलन में आना नहीं चाहता था। चोर-बाजारी में मालामाल हुए ये कलकत्ते के सेठ कवियों को अपने

मनोरंजन के लिये बुलाते हैं।" रसिकेंद्र ने सड़क के किनारे खड़े होकर लेक्चर झाड़ना शुरू किया—"भाइयो, बहनो, रास्ता चलनेवालो, देखो, कलकत्ते में कवियों की मुसीबत देखो। कवयित्रियों को अपनी पुत्र-वधुओं की तरह अपने घर ले गए हैं, और कवियों को कँगलों की तरह सड़कों पर मारा-मारा फिरने को छोड़ दिया है। हाय! अब हम कहाँ जायँ?"

घूँघटजी और पायलजी ने देखा कि रसिकेंद्र की बातें सुनने के लिये काफ़ी लोग जमा हो गए हैं। तब वे भी रिक्शा पर से उतर आए। घूँघटजी ने कहा—"हम लोग राष्ट्र-भाषा हिंदी के महान् कवि हैं।" पायलजी बोले—"हमारा अपमान राष्ट्र-भाषा का अपमान है।"

"मैं एक छंद में कलकत्ता फूँक दूँगा। मुझको ये कलकत्ते-वाले समझते क्या हैं?" रसिकेंद्र ने कहा।

तीनों कवियों की यह बकवास काफ़ी देर तक जारी रही। अंत में वे जिधर से यहाँ तक आए थे, उधर ही चल पड़े।

तीनों कवि ट्रामों, मोटरों आदि से बचते कलकत्ते की चहल-पहल के बीच इस तरह चले जा रहे थे, जैसे चूहेदानी में फँसाकर तीन चूहे किसी ने विशाल जन-पथ पर फेंक दिए हों।

आधी रात को वे लौटकर जब धर्मशाले में पहुँचे, तब मालूम हुआ कि कवि लोग कवि-सम्मेलन से लौट आए हैं, और खा-पीकर सो रहे हैं।

सुलोचना ने तत्काल पानी गर्म करके तीनों को एक-एक प्याला चाय और कुछ खाने को दिया। चिनगारीदेवी ने जो सोने की तैयारी कर रही थीं, सुलोचना के कमरे में चहल-पहल देखी, तो वहीं आ गईं बोलीं—"अरे! रसिकेंद्रजी! आप कवि-सम्मेलन में क्यों नहीं पधारे?"

"चोर-बाजारियों का दिल बहलानेवाले कवियों में मैं नहीं हूँ।" रसिकेंद्र ने कहा।

"और मैं तो घर से ही निश्चय करके चला था कि इस कवि-सम्मेलन का बायकाट करूँगा।" घूँघटजी ने कहा।

"देखूँगा, कल कैसे कवि-सम्मेलन होता है।" पायलजी गरजे।

ये बातें हो ही रही थीं कि आनंदमयीजी वहाँ आ उपस्थित हुईं।

"हूँ। लंपटों से कवि-सम्मेलन बदनाम हो गया।" वह बोलीं।

"लंपट वे हैं, जो उस कवि-सम्मेलन में गए थे। हम लोग स्वाभिमानी कवि हैं। चोर-बाजारियों का अन्न ग्रहण नहीं कर सकते।" रसिकेंद्र ने कहा।

"जो स्त्रियाँ अपने पतियों को धर्मशाले में बैठालकर पर-पुरुषों के साथ स्वच्छंद विचरण करती हैं, उनको यह अधिकार नहीं है कि हमें लंपट कहें।" घूँघटजी ने कहा।

"घूँघटजी, आनंदमयी ने अभी विवाह नहीं किया है।" चिनगारीदेवी ने कहा।

"नंदलाल के पीछे घूम रही है, चुड़ैल की तरह। यह बात कौन नहीं जानता।" पायलजी बोले।

सुलोचना मृदु स्वर में बोली—"जान पड़ता है, आप सब लोग बहुत भूखे हैं। लीजिए, एक-एक प्याला चाय और लीजिए। कुछ मीठी बातें कीजिए।"

रसिकेंद्र ने कहा—"अपनी शिष्या का यह प्रस्ताव मैं स्वीकार करता हूँ। अच्छा, तो सुनिए—

रावरे नेह को लाज तजी अरु
गेह के काज सबै बिसराए।"

इसी समय शोभा कमरे में दाखिल हुई।" बस-बस, जानती हूँ, यही कहना चाहते हो न कि—

कोऊ कितेक उपाय करौ, कहूँ
होत हैं आपने पीव पराए।"

"मैं कहती हूँ, आज की स्त्री को इन भुलावों में नहीं रक्खा जा सकता। तलाक का क़ानून अगर अभी तक पास नहीं हुआ है, तो अब होगा। 'पराए पीव' अपने हो सकते हैं।"

"परंतु यह तो बताइए कि आपका यह इशारा किसकी ओर है।"

"संभवतः सुलोचना की ओर, क्यों रसिकेंद्रजी ?" आनंदमयी ने व्यंग्य किया।

"जी नहीं, आपकी ओर है। मुझसे अधिक न कहलवाइए।" रसिकेंद्र ने कहा।

"तो सुनो।" आनंदमयी ने कहा—"आज कलकत्ता के धर्म-समाज में मेरा और नंदलाल का विवाह हो जायगा। कल प्रातःकाल समाचार-पत्रों में यह संवाद पढ़ लेना।"

सुलोचना इस समाचार से जरा भी विचलित नहीं हुई।

उसने कहा—"अंतिम चरण फिर तो पढ़िए।"

रसिकेंद्र ने उच्च स्वर से, विजेता के-से स्वर में, पढ़ना शुरू किया—

कोऊ कितेक उपाय करौ, कहूँ
होत हैं आपने पीव पराए।

"यह परकीया खंडिता नायिका की उक्ति है।" घूँघट कवि ने कहा। "और यह साफ़ आनंदमयी पर लागू होता है।" पायलजी बोले।

सुलोचना बोली—"मैं कवि की इस वाणी को मिथ्या न जाने दूँगी, आनंदमयी बहन। मेरे जीते-जी तुम मेरे पति को मुझसे छीन न सकोगी।"

सुलोचना और न कह सकी। उसकी आँखों से बड़े बड़े आँसू उसके गालों पर बरबस ढुलक आए। सारा वातावरण सुलोचना के प्रति गहरी समवेदना से पूर्ण हो उठा।

---

(५)

सुलोचना धर्मशाले के एकांत कमरे में बैठी सोच रही थी। क्या यह सच हो सकता है कि उसके प्यारे प्रियतम कल आनंद-मयी के हो जायँगे ? परंतु उसके प्रश्न का उत्तर कौन दे ? केवल उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। कमरे के अंदर कभी वह लेटती थी, कभी बैठती थी। कभी उठकर टहलने लगती थी। हाय ! वह क्या करे ? आनंदमयी इस नए युग की नारी ! इस चुड़ैल, इस राक्षसी के चंगुल से अपने पति को वह कैसे मुक्त करे ? किससे राय ले ? किससे सहायता माँगे। उसके एकमात्र सहायक उसके श्वशुर शांतिस्वरूप थे, जो उससे बहुत दूर

इलाहाबाद में थे। उन्हें भी सूचित करे, कैसे ? हाय ! वह कलकत्ता क्यों आई ?

उसके सामने क्षण-भर पूर्व का वह दृश्य साकार हो उठा, जब आनंदमयी ने अपनी आँखें मटकाकर कहा था—"कल प्रातःकाल समाचार-पत्रों में यह संवाद पढ़ लेना।" और उसने उत्तर दिया था, "मेरे जीते-जी तुम मेरे पति को मुझसे छीन न सकोगी ?" उसने दीर्घ निःश्वास लिया—"भगवान्, मेरी लाज बचाओ।"

बाहर से कोई जैसे किवाड़े खटखटा रहा था। सुलोचना उठी। शायद वह आ गए। अत्यंत शांति भाव से द्वार खोल दिया। शोभा खड़ी मुस्किरा रही थी। उसके साथ एक युवक था, जिसे सुलोचना ने पहले कभी नहीं देखा था।

"यह हैं श्रीमती सुलोचनादेवी, जो पूछना चाहो, पूछ लो।" शोभा बोली।

युवक ने सुलोचना को अभिवादन किया—"मैं भारतीय युवक-सभा का मंत्री हूँ। क्या यह सच है कि प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री-नंदलाल की आप विवाहिता पत्नी हैं ?"

"आप यह प्रश्न मुझसे क्यों कर रहे हैं ?"

"धर्म-समाज में उनका और आनंदमयी का विवाह हो रहा है। वहाँ दोनो ने अपने को क्वाँरा घोषित किया है। इस पर कविवर रसिकेंद्र ने आपत्ति की है। उन्होंने आपको उनकी विवाहिता पत्नी बताया है। यहाँ का युवक-समाज इस बात के

विरुद्ध है कि कोई पुरुष एक पत्नी के रहते दूसरा ब्याह करे। अतएव वह सत्याग्रह करने जा रहा है। निश्चय ही आप यह विवाह पसंद न करेंगी। मैं चाहता हूँ, आप इस विवाह के विरोध में, जो आपके हित के लिये ही है; हमारा साथ दें।"

"मैं किस प्रकार आपका साथ दे सकती हूँ ?"

"घटना-स्थल पर उपस्थित होकर और इस बात की घोषणा करके कि आप नंदलाल की विवाहिता पत्नी हैं।"

"यह मुझसे न होगा। मैंने उनकी इच्छा को ही अपनी इच्छा बना लिया है। यदि वह अपने को क्वाँरा कहते हैं, तो मैं उनको झूठा साबित नहीं करना चाहती। वह स्वतंत्र हैं, जो उचित समझें, करें। मेरा बल केवल विनय का है।"

"तो चलो न। विनय ही करो।"

सुलोचना कुछ कहे, इसके पहले ही उसे नंदलाल का कर्कश स्वर सुनाई पड़ा—"महाशय, अब आपको बहुत कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा विवाह हो गया।"

नंदलाल आनंदमयी के एक हाथ को अपनी बगल में दबाए कुछ उत्तेजित-सा चला आ रहा था।

"सुलोचना !" कमरे के द्वार पर पहुँचते ही उसने कहा—"मैंने आनंदमयी से विवाह कर लिया है। तुम यह तो जानती ही हो कि मेरा-तुम्हारा विवाह हमारे-तुम्हारे पिताओं का एक खेल-मात्र था। उसमें हमारी-तुम्हारी स्वीकृति नहीं थी।"

"मेरे पिता की स्वीकृति में मेरी स्वीकृति थी।" सुलोचना

धीरज के साथ बोली। उसका हृदय जोर-जोर से धड़क रहा था।

"रही होगी। पर मेरे पिता की स्वीकृति में मेरी स्वीकृति नहीं थी। अतएव वह विवाह वैध नहीं हो सकता।"

"इससे मेरी इस मान्यता में कि मैं अपकी पत्नी हूँ कोई अंतर नहीं पड़ता।"

वह कमरे के अंदर अपने हाथों से टाँगे परदों की आड़ में चली गई। मानो यह प्रकट करने के लिये कि कौन स्त्री है, जो उससे उसका गृह-स्वामिनी का अधिकार छीन सकती है, नंदलाल आनंदमयी को स्नेह से खींचता हुआ अंदर आया। दोनों कमरे में सुलोचना द्वारा बिछाए गए फर्श पर बैठ गए। परंतु उन्हें लगा, जैसे वे कोई अपराधी हों। दोनों बड़ी देर तक इस तरह गुमसुम बैठे रहे, जैसे उन्हें डर था कि बोले और पकड़े गए।

शोभा जिस युवक के साथ आई थी, उसी के साथ वापस चली गई। नंदलाल ने इसे एक प्रकार से अच्छा ही समझा। आनंदमयी ने कहा—"भीरु बनने से काम न चलेगा। सुलोचना को तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा।"

"परंतु सुलोचना मुझे न छोड़े तो ?"

"तो क्या एक साथ दो पत्नियाँ रखने का इरादा है ? कैसी बातें आप करते हैं ?"

"पत्नी तो मेरी आप ही हैं। परंतु जब तक पिताजी जीवित हैं, सुलोचना को मेरे घर में वही मान और वही स्थान प्राप्त

रहेगा, जो इस समय उसे मिला हुआ है। इस सत्य बात की हम उपेक्षा नहीं कर सकते।"

"हूँ! तो ऐसे पिता से संबंध-विच्छेद करना होगा। क्रांति का मार्ग प्रशस्त करने लिये आवश्यक है कि उन माता-पिताओं के विरुद्ध भी विद्रोह किया जाय, जो केवल अपनी पुरानी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण अपनी संतान का जीवन बर्बाद करते हैं। तुम्हें जनता के सामने एक आदर्श रखना है, दकियानूस पिता को छोड़कर, उस पिता द्वारा बलात् ब्याही गई पत्नी को त्याग कर।" सुलोचना कहती गई—"बीच की स्थिति मुझे सह्य न होगी। अभी लिखो, अपने पिता के नाम एक पत्र। मैं स्वयं उसे लेकर उनसे मिलूँगी।"

सुलोचना पर्दे के अंदर से यह सब सुन रही थी। पर मानो उसने कुछ न सुना हो। वह इन सब बातों की परवा न करके अपने पति की सेवा में लग गई, जैसे पहले लग जाया करती थी।

उसने उनका बक्स खोलकर, घर में पहननेवाले कपड़े निकालकर उनके सामने रक्खे। बोली—"लीजिए, कपड़े बदल लीजिए, भोजन तैयार है।"

नंदलाल ने यंत्र-चालित खिलौने की भाँति सुलोचना की इस आज्ञा का पालन किया। पर आनंदमयी बोली—"आप मेरे कमरे में चलें, अब यहाँ आपका रहना उचित नहीं है।"

"ठहरिए देवीजी" सुलोचना बोली—"इन्हें भोजन कर लेने दीजिए, आप भी कुछ खाइए। जब आप इनकी पत्नी हैं, तब

इनके भोजन, विश्राम, रुचि का भी कुछ ख़याल कीजिए। उसके बाद जहाँ चाहिए, लिवा जाइए। मैं रोकूँगी नहीं।"

नंदलाल इस बीच में कपड़े बदल चुका था। वह भोजन करने बैठ गया। आनंदमयी भी उसी की थाली में जम गई। सुलोचना दोनों को प्रेम से भोजन ला-लाकर देने लगी, जैसे उनकी नौकरानी हो।

"इस स्त्री को छोड़ सकना संभव न होगा।" नंदलाल ने मन-ही-मन कहा। आनंदमयी यद्यपि अपने प्रयत्न में सफल हो गई थी, तथापि सुलोचना के आगे उसने अपने को बहुत कुछ निर्बल पाया। उसके दिए हुए भोजन से तृप्ति लाभ कर वह मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई बोली—"इस तरह हमारी नौकरानी बनकर सुलोचना रहे, तो मैं उसे रहने दूँगी।" उसने मंद हास्य के साथ व्यंग्य किया।

"आपकी इस अबला पर बड़ी कृपा होगी।" नंदलाल बोला। सुलोचना ने कोई उत्तर नहीं दिया। किसके बल पर वह बोलती? पति पूर्ण रूप से दूसरे का हो चुका था। श्वशुर, जो उसका पक्ष ले सकते थे, उससे बहुत दूर थे। हृदय की बेकली को धैर्य की बोझिल शिला के नीचे दबाकर वह जूठे बर्तनों को उठाकर पास के नल पर धोने चली गई। पति ने जितनी सेवा उससे लेना स्वीकार किया, उतने के लिये भी उसने परमेश्वर को धन्यवाद दिया, और चमचमाते हुए बर्तनों को लेकर जब वह आई, देखा कि आनंदमयी उसके पति को लेकर चली गई है।

उस रात उससे खाया न गया। कमरे को अंदर से बंद करके वह फ़र्श पर धड़ाम से गिरी, और सिसक-सिसककर रोने लगी।

नंदलाल चाहता था कि सुलोचना को बता दे कि वह कहाँ जा रहा है। परंतु आनंदमयी ने उसे ऐसा न करने दिया।

वह आनंदमयी के साथ जा तो रहा था, पर उसका हृदय सुलोचना के पास ही रह गया था। उसे लग रहा था कि उसने सुलोचना के प्रति अन्याय किया है। वह छोटा बच्चा नहीं था। लाख पिता ने उस पर दबाव डाला था। वह सुलोचना से विवाह करना अस्वीकार कर सकता था। पर न कर सका। उस भूल का प्रायश्चित्त उसने आनंदमयी से ब्याह करके किया। पर यह तो और भी बड़ी भूल हो गई। इससे तो आनंदमयी के हाथों मृत्यु कहीं अधिक श्रेयस्कर होती। उसने कहा—"आनंदमयी, मुझे थोड़ा समय दो, मैं सुलोचना को सब स्थिति अच्छी तरह समझा आऊँ। पिताजी को अपने अनुकूल बनाए रखने के लिये उसको किसी-न-किसी समझौते के साथ त्यागना आवश्यक है।"

"जाओ, पर जल्दी लौटना। आगे हमें बड़े-बड़े निर्णय करने हैं।"

नंदलाल लौट आया। कमरे का द्वार बंद था। उसने मृदु स्वर में कहा—"सुलोचना!"

सुलोचना जो जल-विहीन मछली की तरह तड़फड़ा रही थी, इस प्रकार उठी, जैसे गंगा की धारा में पड़ गई हो। उसने कमरे का द्वारा खोल दिया। कुछ बोली नहीं।

नंदलाल फ़र्श पर बैठ गया। बोला—"बैठो। तुमसे एक ज़रूरी बात करनी है।"

सुलोचना पास ही बैठ गई। नंदलाल कहने लगा—"प्रियतमे! मैं भारी संकट में पड़ गया हूँ। आनंदमयी से विवाह करने का वादा मैंने किया था। उसे पूरा नहीं करता, तो अपने प्राणों से हाथ धोता। निश्चय ही तुम मेरी मृत्यु क़बूल न करोगी। तब जो मैंने किया, वह ठीक ही किया, यह तुम मानती हो न?"

"मानना ही पड़ेगा।"

"तब मुझे क्या आज्ञा देती हो?"

"आज्ञा देना मुझे नहीं सिखाया गया। माता-पिता ने केवल आज्ञा-पालन की सीख दी है। अब तक उनकी आज्ञा मानती रही हूँ। जिस दिन माता ने मेरा हाथ पकड़कर पालकी पर बैठाया, मुझे याद है, उन्होंने कहा था, और पिताजी ने भी कहा था—'बेटी! आज तक तूने मेरी आज्ञा मानी। अब अपने पति की आज्ञा मानना।' माता पिता के उस आदेश का मुझे पालन करना है। आप आज्ञा दें। आपके घर से निकल जाने के अतिरिक्त और आप जो भी आज्ञा देंगे, सब मानूँगी। अगर मेरा कोई हठ होगा, तो इतना ही कि मरना भी पड़े, तो आपके घर में।"

नंदलाल यह सुनकर बहुत गंभीर हो उठा। सुलोचना उसे अपनी पत्नी ही नहीं, पत्नी से भी बहुत बड़ी माता के समान प्रतीत हुई। नंदलाल ने छोटे बच्चे के समान रुआसा-सा होकर कहा—"इस संकट की घड़ी में मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है।"

"आपके सुख में ही मेरा सुख है। मेरे ऊपर भरोसा करें।"

"मैं चाहता हूँ, तुम मुझे यहाँ छोड़कर अकेली वापस जाओ। पिताजी को धीरज बँधाओ, और...."

"मेरी प्रार्थना यह है कि मुझे घर तक आप स्वयं पहुँचा दें। फिर चले आवें।"

"अच्छी बात है। अच्छा, तो तुम खाओ-पियो। मैं एक बहुत ही आवश्यक मीटिंग में जा रहा हूँ।"

"जाइए।"

सुलोचना ने आँखों में अश्रु भरे भारी हृदय से पति को बिदा किया। उनके जाने के बाद वह पुनः फ़र्श पर धड़ाम से गिर पड़ी, और सिसक-सिसककर रोने लगी—"आनंदमयी, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तूने मेरी सोने की गृहस्थी में आग लगा दी! क्या इतने बड़े संसार में तुझे कोई पुरुष ही नहीं मिला। पिशाचिनी! दुष्टे!! ओफ़्! क्या कह गई? जिसको पति अपने प्रेम की देवी समझते हैं, उस दुष्टा को भी मैं प्यार कर सकूँ। प्रभो! मुझे बल दो।"

इस प्रकार सिसकती-बिलखती सो गई या बेहोश हो गई, वह जान न सकी।

---

(६)

सुलोचना इन्हीं सब बातों पर अपने कमरे में बैठी हुई सोच रही थी। शोभा, चिनगारी, रसिकेंद्र आदि उसके साथ सम-वेदना प्रकट कर रहे थे। नंदलाल और आनंदमयी का पता न था। वे पिछली रात से ही ग़ायब थे।

सुलोचना के माता-पिता ने उसे ऐसी शिक्षा दी थी कि वह भारतीय आदर्शों के अनुरूप श्रेष्ठ गृहिणी बन सके—रसोई, शिशु-पालन, आतिथ्य-सत्कार, रोगी-सेवा, गृह-प्रबंध, शृंगार, सभी कलाओं में वह निपुण थी। परंतु जब उसका पति ही उसके हाथ से निकल गया था, तब मानो यह सब बेकार था।

"विवाहिता नारी की सफलता इस बात में है कि वह पति पर पूर्ण रूप से क़ाबू रक्खे।" चिनगारीदेवी ने कहा—"इस मामले में मैं शोभा की प्रशंसा करूँगी, जो पति को उँगली पर नचाती रहती है।"

"नहीं-नहीं, पति ऐसा चाहिए, जो पत्नी पर शासन कर सके। ऐसा नहीं, जो....... ।"

"तब बेचारे को गुलाम क्यों बनाए हुए हो ?" रसिकेंद्र ने कहा।

"रसिकेंद्र, तुम नहीं जानते। मेरी व्यथा सुलोचना से कई गुना अधिक है। जिसे तुम मेरा पति समझते हो, वह मेरा नौकर-मात्र है। मेरा जीवन-सहचर ! आह ! वह कदापि नहीं हो सकता।"

"जीवन-सहचर तो वह बनाने से ही बनेगा।" सुलोचना बोली।

"क्या कहती हो बहन, गधे को कोई घोड़ा नहीं बना सकता।" शोभा ने दीर्घ निःश्वास लिया।

उसी समय शोभा का पति बच्चे को गोद में लिए हुए आया। बच्चे को शोभा के पास बैठाकर कमरे के अंदर सामान बाँधने चला गया।

"हाय ! यह कितने अच्छे हैं। कितने सरल। कितने मृदु।" सुलोचना बोली।

"सेवक में जो विशेषताएँ होनी चाहिए, वे सब इनमें हैं।" शोभा बोली।

"धन्य है वह स्त्री, जिसका पति उसका सेवक हो।" रसिकेंद्र ने कहा, और उसने गहरी तान छेड़ी—

आपने हाथ सों देत महावर,
आपुहिं बार सँवारत नीके ;
आपुन ही पहिरावत चूनरि,
हार सँवारत मौलसिरी के।
हौं सखि, लाजन जात गड़ी, अब
और स्वभाव कहा कहौं पी के ;
लोग कहैं घर घेरे रहैं,
अब हीं ते ये चेरे भए दुलही के।

सारा धर्मशाला रसिकेंद्र की इस तान से गूँज उठा। कवि लोग जो अपना-अपना बिस्तर बाँधकर जल्दी-से-जल्दी स्टेशन पहुँच जाने की चिंता में थे, इस प्रकार दौड़ पड़े, जैसे किसी सैनिक-शिविर में एकाएक बिगुल बज उठने से जो सिपाही जहाँ, जिस रूप में रहता है, वहाँ से वैसे ही दौड़ पड़ता है।

शोभा ने टिप्पणी की—"क्या कहते हो रसिकेंद्रजी, यह रूप-गर्विता नायिका की उक्ति है, मुग्धानायक के प्रति।"

"तो आप कौन रूपगर्विता नायिका से कम हैं ?" रसिकेंद्र ने कहा।

"यह तो ठीक है।" शोभा ने कुछ गर्व का अनुभव करते हुए कहा—"परंतु जिस व्यक्ति को तुम नायक समझ बैठे हो, उसे नायक कहना इस शब्द का अपमान करना है।"

"नायक तो वह बनाने से ही बनेगा।" सुलोचना फिर बोली।

"नायक वह है, जो स्त्री को अपनी ओर आकृष्ट कर सके।" शोभा बोली।

"और जो स्वतः स्त्री की ओर आकृष्ट हो, काव्य की परिभाषा में वह उससे भी बड़ा नायक है।" रसिकेंद्र ने कहा।

"कोई उदाहरण दीजिए।" शोभा बोली।

"जैसे कृष्ण राधा की ओर आकृष्ट हुए थे। जैसे राम सीता की ओर आकृष्ट हुए थे।" रसिकेंद्र ने कहा।

"बस-बस, चुप रहिए।" शोभा ने झिड़का—"यह जो उदाहरण आपने दिया है, नायक की मेरी परिभाषा का है। कृष्ण ने राधा को अपनी ओर आकृष्ट किया था। राम ने सीता को अपनी ओर आकृष्ट किया था। परंतु कविवर, आपकी परिभाषा के अनुसार नायक हुआ रावण, जो स्वतः सीता की ओर आकृष्ट हुआ था।"

"तो यह कहिए कि आप सीता हैं, और रावण की क़ैद में हैं।" चिनगारीदेवी हँस पड़ीं।

"कहूँ, तो अनुचित न होगा।" शोभा बोली—"वह पुरुष भले ही रावण न हो, पर उसके पीछे समाज रावण के रूप में खड़ा है। मेरा ही उदाहरण लीजिए। मैं जब बहुत छोटी थी, मेरा ब्याह इन महाशय के साथ हो गया। मैंने पढ़ा-लिखा, योग्य बनी। पर यह मूर्ख-के-मूर्ख रह गए। मैं अपने मन का पति नहीं चुन सकती, क्योंकि समाज का रावण इनका हाथ-पाँव बना

मुझे जकड़े है। आज देश में ऐसी लाखों सीताएँ हैं, जो समाज के रावणी बंधनों में क़ैद हैं। इस सामाजिक रावण के ध्वंस का एक ही उपाय है। तलाक का क़ानून।"

"तो आप यह कहना चाहती हैं कि नंदलालजी ने जो कुछ किया, ठीक किया।" चिनगारीदेवी ने कहा।

"नहीं, नंदलाल ने ठीक नहीं किया। उन्होंने जब सुलोचना-देवी से विवाह किया, वह बच्चे नहीं थे।"

शोभा ने कहा—"आनंदमयी ने शूपनखा की भाँति अनधिकार चेष्टा की है।"

"जी, और मैं नंदलाल के स्थान पर होता, तो उसकी नाक काट लेता।" कविवर रसिकेंद्र ने कहा।

"पता नहीं, आप उसकी नाक काटते या उसके तलवे चाटते।" कहती हुई आनंदमयी चली आ रही थी। नंदलाल उसके पीछे थे।

रसिकेंद्र बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। आनंदमयी उपस्थित होती, तो वह शायद ऐसी बात न कहता। परंतु अब कह चुका था, तो उस पर क़ायम रहना चाहता था। बोला—"साहित्य में परकीया नायिका क्षम्य है। हो सकता है, आपके रूप का जादू मुझ पर कुछ ऐसा पड़ता कि आपके तलवे ही मुझे चाटने पड़ते। पर आप कहलातीं परकीया ही। परकीया लाख पर-पुरुषों द्वारा समादृत हो, है वह परकीया ही। स्वकीया को समाज में जो आदर का स्थान प्राप्त है, उसे नहीं मिल सकता।

सुलोचना स्वकीया है, आप परकीया। इसे कौन स्वीकार न करेगा ?"

आनंदमयी ने कहा—"बस, यह बकवास बंद करो। किसी के व्यक्तिगत मामले में तुम्हें टाँग अड़ाने का कोई अधिकार नहीं।"

"आपका यह कार्य व्यक्तिगत तभी तक माना जाता, जब तक गुप्त रहता। परकीया अप्रकट ही अच्छी होती है। प्रकट होने पर वह सार्वजनिक चर्चा का विषय बन जाती और कुलटा कहलाती है। ठीक है न शोभा देवी ?" रसिकेंद्र ने कहा।

शोभा कुछ बोली नहीं। मंद-मंद मुस्किरा उठी। उसकी यह मुस्कान आनंदमयी को बहुत बुरी लगी। बोली—"शोभा, तुम्हीं लोगों ने इस तुक्कड़ को मुँह लगाकर सिर चढ़ा लिया है। मैं यह बेहूदापन बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

इतने कवियों और कवयित्रियों के बीच में अपने लिये तुकड़-शब्द का प्रयोग रसिकेंद्र को बहुत अखरा। बोला—"मेरी प्रतिभा नंदलाल की सुलोचना नहीं है, जो तुम्हारे परकीयात्व से डर जायगी। मुझे नंदलालजी का खयाल है, नहीं तो एक छंद में दुनिया उलट सकता हूँ। ऐसी शक्ति रखता हूँ मैं।"

"मूर्खता का कोई इलाज नहीं है।" आनंदमयी ने तिरस्कार से रसिकेंद्र की ओर देखते हुए कहा—"नंदलालजी, तैयारी कीजिए, हमें पहली गाड़ी से चलना है।" और वह अपने कमरे में चली गई।

नंदलाल ने सुलोचना से पूछा—"आज चलना है न? तुम्हारी तो अभी कोई तैयारी नहीं जान पड़ती।"

सुलोचना ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप अपना बिस्तर समेटने में लग गई। वह अब भी नंदलाल को अपना समझ रही थी।

उसी समय स्वागत-समिति के लोग कवियों को मार्ग व्यय और बिदाई देने आए।

एक बार फिर सब कवि मुख्य कमरे में एकत्र हुए। स्वागत-समिति के सदस्यों ने रसिकेंद्र का ख़ास तौर से स्वागत किया। और उसे थैली भेंट की। यह मानो रिशवत थी, इस बात के लिये कि स्वागत-समिति के सदस्यों की छंदोबद्ध बदनामी न करे।

रसिकेंद्र का यह स्वागत-सत्कार शोभा से न देखा गया। उसने कहा—"यह आवश्यक है कि एक नवीन राजनीतिक दल संगठित हो, और वर्तमान कांग्रेसी शासन का, जिसमें पूँजी-पतियों और चोर बजारियों का बोलबाला है, अंत करे।"

रसिकेंद्र आज पूँजीपतियों के विरुद्ध कुछ कहने को तैयार न था। बोला—"शोभा रानी, समझ लो, पूँजीपतियों ही के दम तक हम कवियों की भी ज़िंदगी है। उसके बाद तो........।"

अब आनंदमयी चुप न रह सकी। बोली—"वर्तमान कांग्रेसी दल सब प्रकार असफल सिद्ध हुआ है, अतएव उसे हटाना ही पड़ेगा।"

एक सेठजी बोले—"यह तो आप ठीक कहती हैं देवीजी!

और माना कि आपके क्रांतिकारी दल में ऐसे-ऐसे अनुभवी और त्यागी लोग मौजूद हैं, जो वर्तमान कांग्रेसी नेताओं से किसी बात में कम नहीं। परंतु उन्हें जानता कौन है ?"

आनंदमयी ने कहा—"यह ठीक है कि जनता उन्हें नहीं जानती। पर इससे क्या उनके अस्तित्व में कोई अंतर पड़ता है। समय आवेगा, जब वे भारी विस्फोट के साथ प्रकट होंगे, जैसे सरदार भगतसिंह असेंबली पर बम फेंककर प्रकट हुए थे।"

"और, जैसे आप नंदलाल के साथ विवाह करके प्रकट हुई हैं।" रसिकेंद्र ने कहा।

"नंदलाल ! प्रसिद्ध क्रांतकारी नंदलाल !! आपका दर्शन करके हम धन्य हुए। नाम सुनते रहे। दर्शनों का सौभाग्य आज हमें मिला है।" कहकर स्वागत-समिति के सदस्यों ने उसे घेर लिया। उसके क्रांतिकारी जीवन के बारे में तरह तरह के प्रश्न वे करने लगे। किस प्रकार उन्होंने बनखंडी में रेल उलटाई, किस प्रकार गोरी पल्टन से एक घंटे तक लड़े, किस प्रकार जिस दिन उन्हें फाँसी लगनेवाली थी, उसी दिन मांडले की जेल से भाग निकले आदि-आदि। और अंत में एक सेठ साहब पूछ ही बैठे—"जब आपके ऐसे ऊँचे विचार हैं, तब एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह क्यों कर लिया ?"

इस पर नंदलाल ने एक लंबा भाषण ही दे डाला, जिसका सारांश यह था—"विवाह को मैं जीवन का ध्येय नहीं मानता। लक्ष्य पर पहुँचने का एक साधन मान सकता हूँ। मेरा विवाह

पिता ने मेरी मर्जी के विरुद्ध कर दिया। परंपरागत संस्कार के वशीभूत हो मैं उनका विरोध नहीं कर सका, पर क्रमशः मैंने अनुभव किया कि मुझसे भूल हो गई है। अब अगर उस भूल को सुधारूँ, तो इसमें किसी को क्यों आपत्ति हो?"

उसी समय नंदलाल के नाम एक तार आया, जो तुरंत ही खोलकर उसने पढ़ा। तार उसके पिता सर शांतिस्वरूप ने भेजा था। उसका आशय यह था—"नंदलाल, आज के समाचार पत्रों से विदित हुआ कि तुमने दूसरा ब्याह कर लिया। चूँकि तुमने यह काम मेरी मर्जी के विरुद्ध किया, इसलिये तुम्हें अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी अब नहीं मानूँगा। साथ ही तुम्हारे लिये मेरे घर के द्वार अब बंद हैं। मेरी मृत्यु के बाद सुलोचना मेरे गृह की स्वामिनी होगी और समस्त संपत्ति की उत्तराधिकारिणी।

—शांतिस्वरूप

तार पढ़कर नंदलाल मृतप्राय-सा हो उठा। पिता की जिस अपार संपत्ति के बल पर वह भारत में नवीन राजनीतिक दल खड़ा करना चाहता था, उसका सहारा एकदम जाता रहा। उसकी कल्पना का जहाज जीवन के इस लघु असंयत मार्ग में यहाँ चट्टान से टकराकर जैसे चूर-चूर हो गया।

तार उसने सुलोचना को दे दिया। सुलोचना ने उसे पढ़ा, तो उसकी आँखों में आँसू आ गए। सबके सामने ही वह बोली—"स्वामी, आप घर चलें। मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण आपका जीवन बरबाद हो। मैं पिताजी को समझाऊँगी। मैं अपनी

स्वेच्छा से आपका गृह सदा के लिये त्याग दूँगी। आप चलें।

"नहीं, मैं अब घर नहीं लौटूँगा। अपने भाग्य की आजमाइश करूँगा। आनंदमयी!"

"क्या कहते हो?"

"चलो, हम-तुम अज्ञात स्थान को इसी दम निकल चलें। अब और कोई रास्ता नहीं है।"

"मैंने अकेले तुमसे विवाह नहीं किया है। तुम्हारे साथ मैं तभी चल सकती हूँ, जब तुम्हारी संपत्ति का उपभोग करने का मेरा अधिकार बना रहे।"

"पिताजी यह स्वीकार न करें, तो?"

"उन्हें करना होगा। मैं उन्हें मजबूर करूँगी।"

"अच्छा, तो मैं जाता हूँ।" और नंदलाल आवेश में बाहर चला गया।

सुलोचना झपटी—"मेरे स्वामी!" परंतु वह बेरहमी उसका हाथ मरोड़कर बाहर निकल गया।

---

(७)

कलकत्ता के कवि-सम्मेलन से लौटने पर कविवर रसिकेंद्र ने जो पहला काम किया, वह यह था कि वह श्रीशांतिस्वरूप से मिले, और जो कुछ देखा और सुना था, बड़े विस्तार के साथ, बहुत कुछ नमक-मिर्च लगाकर उनसे कह सुनाया।

शांतिस्वरूप कुछ बोले नहीं। गंभीर भाव से एक-एक बात उन्होंने सुनी, और अपना कर्तव्य निश्चित किया।

जो पुत्र उनकी पसंद की हुई कन्या को अपनी वधू बनाने को तैयार नहीं है, उसे वह अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी कदापि

स्वीकार न करेंगे। उनके घर में उसका स्थान नहीं है। वह नंदलाल को इतना अधिक प्यार करते थे कि उसके विरुद्ध इस प्रकार का निर्णय उन्हें बहुत सख्त प्रतीत हुआ।

वह हाईकोर्ट के जज रह चुके थे। अनेक ऐसे अवसर उनके जीवन में आए थे, जब उन्होंने अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपराधियों को कड़ी सजाएँ सुनाई थीं। उनके सामने वे सब क्षण सजीव-से होकर एक के बाद एक आने लगे।

एक स्त्री को, जिसने अपने पति को जहर दे दिया था, उन्होंने फाँसी की सजा दी थी। उस स्त्री का दयनीय मुख आज उनके स्मृति-पट पर खचित हो-हो उठता था। उसने रो-रोकर अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा था—"मैं पति के सौत के प्रति असीम झुकाव से पागल हो उठी थी। सौत से बदला लेने का मुझे इसके सिवा कोई और उपाय सूझता, तो पति की हत्या न करती। पर मेरे लिये सब रास्ते बंद थे।" उस स्त्री के साथ ही उन्हें अपनी पुत्रवधू सुलोचना का स्मरण हो उठा। ओह! घृणा के आवेश में सुलोचना भी ऐसा ही करे, तो उसके लिये यह सर्वथा स्वाभाविक होगा। परंतु तब मेरे ही समान दूसरा कोई जज उसे फाँसी की सजा बोल देगा। ओह! अपराध कौन करता है, और सजा किसे मिलती है?

इसी बीच में सुलोचना उनके पास आई। मृदु स्वर में बोली—"पिताजी, भोजन तैयार है।"

"कलकत्ता में क्या हुआ रे!"

सुलोचना कुछ बोली नहीं। उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

"बेटी! यह मेरे पापों का फल है, जो मेरे घर में तुझे आँसू बहाने पड़ रहे हैं।"

सुलोचना नहीं चाहती थी कि उसका दुःख किसी पर प्रकट हो। बोली—"पिताजी, रसोई से आ रही हूँ। आँसू कहाँ?"

शांतिस्वरूप कुछ बोले नहीं। सब समझ गए। भोजन के कमरे में आए।

स्वच्छ, शीतल फ़र्श पर कुशासन रक्खा था। उस पर बैठ गए। सुलोचना ने रसोई-घर से एक-एक चीज़ लाकर उनके सामने रक्खी। सुलोचना एक प्रकाश की किरण-सी उन्हें प्रतीत हुई। "ओह, कैसा नालायक़ निकला नंदलाल।" उन्होंने सोचा—"जो इस साक्षात् लक्ष्मी को ठुकरा रहा है!"

वह भोजन करते जाते थे, और कहते जाते थे—"बेटी, तू चिंता न कर? जब तक मैं हूँ, तुझे कोई दुःख न होने पाएगा, और जब मैं न रहूँगा, तब भी ऐसा प्रबंध कर जाऊँगा कि तुझे कुछ......।"

सुलोचना बीच ही में बात काटकर बोली—"पिताजी, मेरी चिंता आप न करें। मैं आपकी पुत्रवधू हूँ। मेरे लिये इतना ही बहुत है। परंतु उन्हें घर में रहने दें, जैसे भी वह रहें।"

"नहीं-नहीं, यह न होगा।"

सहसा पीछे के दरवाज़े पर कुछ आहट-सी हुई। दरवाज़ा खट

से बोला। बिलकुल उसी तरह, जैसे नंदलाल के आने पर बोला करता था। सुलोचना का हृदय धक् से हो गया। उसे लगा कि उसका पति आ गया है, और द्वार पर खड़ा है।

वह भागी-भागी उस कमरे में पहुँची। द्वार खोला। बाहर सचमुच नंदलाल खड़ा था। लज्जित, पराजित, शिथिल, पस्त, दयनीय-सा। बोला—"मुझे तेज ज्वर है? क्या थोड़ा यहाँ विश्राम करने दोगी?"

"मेरा सौभाग्य है, जो स्वामी आज पधारे।"

सुलोचना ने अपने डगमग पग धरते हुए पति को अपने हाथों में इस तरह सँभाल लिया, जैसे कोई चतुर खिलाड़ी बहकते हुए गेंद को आधे रास्ते में ही रोक लेता है।

कमरे में पलंग बिछा था। स्नेह से नन्हे शिशु के समान नंदलाल को उस पर लिटाती हुई बोली—"पिताजी भोजन कर रहे हैं। अभी आती हूँ।" और वह तेजी से चली गई।

"कौन है रे?"

"वही हैं।"

"नंदलाल?"

"हूँ।"

शांतिस्वरूप उत्तेजित हो उठे—"भीतर से दरवाजा बंद कर दिया है न? हमारे घर में उसके लिये स्थान नहीं है।"

"उन्हें बुखार है।"

"कुछ भी हो।"

सुलोचना अपने काम में लग-सी गई। शांतिस्वरूप से खाया न गया। मुँह-हाथ धोने की जगह पर आकर वह बड़बड़ाने लगे—"बेटी, अब हमें इसका मोह छोड़ना ही होगा।"

"मैंने कहा न, पिताजी, उन्हें बुखार है।"

"कुछ भी हो।" शांतिस्वरूप क्रोध के स्वर में फिर बोले।

"मनुष्य का मनुष्य के प्रति भी तो कुछ कर्तव्य होता है।" सुलोचना बोली।

"होता है, पर मनुष्य जब मनुष्य हो।"

शांतिस्वरूप घर के उस हिस्से की ओर बढ़े। इस इरादे से कि नंदलाल को स्वयं घर से इसी दम निकाल दें।

सुलोचना उनका इरादा समझ गई। दौड़कर उनके पैरों से लिपट गई। गिड़गिड़ाकर बोली—"पिताजी, उन्हें सख्त बुखार है। इस अवस्था में...।"

"नहीं, मैं उसे अपने घर में किसी भी अवस्था में नहीं रहने दूँगा।"

वह आगे बढ़े।

सुलोचना ने दौड़कर, अपनी दोनों बाहें फैलाकर उनका रास्ता रोक लिया। बोली—"पिताजी, क्रोध में कोई ऐसा काम न करें कि पीछे पछताना पड़े।"

"मैंने सब सोच लिया है। पछताना तब पड़ेगा, जब उसे इस घर में रहने दूँगा।"

"मेरे ही सुख के लिये आप यह सब कर रहे हैं न?"

शांतिस्वरूप के नेत्र छलछला आए। बोले—"बेटी, तेरा दुःख ही अब मेरा सुख है।"

"तो पिताजी, मुझे दुःख का ही स्वागत करने दें।"

"इसीलिये तो उसे निकाल रहा हूँ। मेरा रास्ता छोड़।"

पर सुलोचना न हटी। ज्यों-की-त्यों अडिग चट्टान-सी खड़ी रही।

तब शांतिस्वरूप ने ज़ोर से वहीं से खड़े-खड़े चिल्लाकर कहा—"नंदलाल! मैंने जो फ़ैसला कर लिया, वह अंतिम है। तुम्हारे लिये अब मेरे घर में एक मिनट के लिये भी स्थान नहीं है। उठो। जाओ, निकलो। हटो। बेशर्म! इसी दम भागो।"

और भी क्रोध में वह न-जाने क्या-क्या कह गए।

सुलोचना अब भी उनका रास्ता रोके खड़ी रही। शांतिस्वरूप के सामने नंदलाल के छुटपन की एक घटना नाच उठी।

एक बार, जब नंदलाल छोटा था, वह उसे मारने दौड़े थे। तब उनकी स्वर्गीय पत्नी उनका रास्ता रोककर इसी प्रकार खड़ी हो गई थी। सुलोचना उसी गाँव की लड़की तो थी। शांतिस्वरूप जैसे २० वर्ष पहले अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध आगे न बढ़ सके थे, वैसे ही आज पुत्रवधू की भी उपेक्षा न कर सके।

चुपचाप अपने कमरे में लौट आए। सोचते हुए—ओफ़, इसी उम्र में बेचारी पर गृहस्थी का कितना भार आ गया है। है तो यह घर की नव वधू, पर इसे बूढ़ी सास के भी कर्तव्यों का पालन करना पड़ रहा है।

वह अपने पलंग पर धम्म से गिर पड़े। सुलोचना उनके पीछे-पीछे दौड़ी हुई आई। मुख पर पंखा झलने लगी।

घर के नौकर-चाकर घर के मालिक का स्वभाव बिगड़ा हुआ देखकर इधर दूर-ही-दूर रहते थे। आज वे भी क़रीब आए।

एक बूढ़ी नौकरानी ने, जिसने नंदलाल को गोद में खिलाया था, सुलोचना के हाथ से पंखा ले लिया।

"मालिक!" वह बड़े धीरे से बोली।

शांतिस्वरूप आँखें बंद किए चुपचाप पड़े रहे। कुछ बोले नहीं। सबको उनकी गंभीर मुखमुद्रा देखकर लगा, जैसे वह मृत्यु का आह्वान कर रहे हों।

इस बीच में मौक़ा पाकर सुलोचना पति के कमरे में गई।

अरे, यह क्या? बिस्तर ख़ाली पड़ा था। नंदलाल न जाने कब का वहाँ से उठकर चुपचाप घर के बाहर निकल गया था।

सुलोचना के धैर्य का बाँध टूट गया। उसके मुँह से ज़ोर की एक चीख़ इस तरह निकली, जैसे किसी ने उसके हृदय में तेज़ छुरी भोंक दी हो।

सब लोग उसी ओर को दौड़े।

शांतिस्वरूप अपने पलंग पर से इस तरह उठकर खड़े हो गए, जैसे कोई मुर्दा चिता पर उठ बैठे।

वह विचित्र रूप से चलते हुए कमरे के द्वार पर पहुँचे, तभी

उन्हें पुत्रवधू का यह स्वर सुनाई पड़ा—"हाय, वह न-जाने कहाँ चले गए, हाय !"

शांतिस्वरूप कुछ बोले नहीं । चोर की तरह दबे पाँवों पुनः अपने कमरे में वापस आ गए, और पलंग पर उसी प्रकार धम्म से गिर पड़े ।

---

(८)

नंदलाल अपने घर से निकल तो पड़ा, परंतु उसके पैर उसे कहाँ लिए जा रहे थे, वह स्वयं नहीं जानता था। एक विचित्र प्रकार की शर्म और बेबसी से आक्रांत उसका मन कुछ सोचने योग्य न रह गया था। क्यों न एक बार आनंदमयी के पास वह फिर जाय, और उसे कुछ अनुकूल बनाने का यत्न करे?

आनंदमयी की बातें उसे याद आ रही थीं—"हम क्रांतिकारी हैं। हमें चौतर्फा क्रांति करनी है। समाज को बदलना है, राजनीति को बदलना है। परिवार को बदलना है, व्यक्ति को बदलना है।

जीवन में कुछ सिद्धांत मानकर उनके अनुसार चलना है। जो अपना रास्ता रोके, वह चाहे पिता हो, चाहे माता, चाहे पत्नी, चाहे पति, चाहे भाई, चाहे बहन, चाहे कोई हो, उसका अंत कर देना है।"

और उसे याद आ रहा था, आनंदमयी ने कहा था—"जाओ, अपने पिता से अपने अधिकारों के लिये लड़ो। तुम स्वाधीन हो, अपने मन की पत्नी चुनने में। केवल इसीलिये पिता तुम्हें घर में न रहने दे, तो तुम उसे शत्रु मानो, और उसे अपना अधिकार जनाओ।"

नंदलाल आनंदमयी के आदेशानुसार अपने घर गया तो जरूर, परंतु उसे जैसे बुखार चढ़ आया। अपने पिता से अधिकार माँगना तो दूर, वह उनके सामने भी जाने का साहस न कर सका, और पत्नी से केवल इतना कह सका—"मुझे तेज ज्वर है। क्या थोड़ा यहाँ विश्राम करने दोगी ?" और पिता का क्रुद्ध स्वर सुनते ही भाग खड़ा हुआ।

आनंदमयी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पर इतनी जल्दी वह आ जायगा, इसकी आशा उसे न थी। आनंदमयी को वह इस प्रकार आता प्रतीत हुआ, जैसे कोई मुर्दा उठ खड़ा हुआ हो, और चला आ रहा हो। उसके चेहरे पर जीवन की किंचित्-मात्र भी कांति न थी।

"आह ! यह कायर है।" वह बोली—"इसके साथ विवाह करने का कोई माने नहीं हो सकता। तब इसका अंत कर देना

ही ठीक है।" उसने पिस्तौल हाथ में ली, और खिड़की के पास तनकर उसकी घात में बैठ गई।

"तैयार हो जाओ।" आनंदमयी का कर्कश स्वर उसके कानों में गूँज उठा।

नंदलाल जैसे सोते से जागा। देखा, आनंदमयी खिड़की पर बैठी है। उसे लगा, जैसे क्रोध ने उसे और भी सुंदर बना दिया है। "ओह, यह स्त्री कितनी महान् है, और मैं कितना क्षुद्र !" उसके मन में यह भावना बिजली के समान कौंध गई—

"क्रांतिकारी मैं अपने को अवश्य घोषित करता था, परंतु मैं परंपरा और सामाजिक रूढ़ियों से जकड़ा हुआ हूँ, और यह निर्मल अग्नि-जैसी साक्षात् क्रांति की देवी। मैं इसके योग्य कदापि नहीं था। ओफ़, बड़ी भूल हुई; और उसका दंड तो भोगना ही पड़ेगा।"

"क्या सोचते हो ?" आनंदमयी फिर गरजी।

"कुछ नहीं, मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। तुम्हारे प्रति मैंने बेशक अन्याय किया है, भारी अन्याय। मैं, जो अपने पिता की मर्ज़ी के विरुद्ध एक क़दम भी किसी तरफ़ उठाने का साहस नहीं कर सकता, क्रांतिकारी कहलाने का दावा छोड़ता हूँ।"

आनंदमयी और भी अधिक क्रोधित होकर, खट-खट करती हुई, दुमंज़िले से नीचे उतर आई, और नंदलाल की छाती में पिस्तौल जमाते हुए बोली—"तुम्हें पाँच मिनट का समय और देती हूँ। अच्छी तरह अपने देवी-देवताओं का स्मरण कर लो, जिससे सीधे

स्वर्ग जाओ, जहाँ से फिर इस पृथ्वी के मानवों को सताने न आ सको।"

नंदलाल कुछ बोला नहीं। दृढ़ता-पूर्वक आनंदमयी की ओर एकटक देखता रहा। उसकी आँखों में आँसू उमड़े आ रहे थे।

"मेरी ओर क्या देखते हो? और, ये आँसू क्यों आ रहे हैं? क्या मरना नहीं चाहते?"

"तुम मेरी महत्त्वाकांक्षाओं की देवी हो। अतएव आँखों में तुम्हारी छवि लेकर मरना चाहता हूँ, और ये आँसू केवल इस-लिये हैं कि मैं प्राण देकर भी तुम्हें वह सुख न पहुँचा सकूँगा, जो मैं पहुँचाना चाहता था।"

"पुरुषों के मुख से इसी प्रकार का काव्य-शास्त्र सुनकर स्त्रियाँ धोखा खाती हैं। परंतु मैं डिगनेवाली नहीं। आँखें बंद करो, एक मिनट हो गया, चार मिनट और हैं।"

आनंदमयी अपनी कलाई पर बँधी घड़ी देखने लगी।

एकाएक शोभा वहाँ आ पहुँची। बोली—"अच्छा, यह कोई नया प्रेमाभिनय है, जिसे आप लोग कर रहे हैं। यह प्रेमाभिनय तो शिव-पार्वती के प्रेमाभिनय से भी विचित्र जान पड़ता है।" और उसने आनंदमयी के हाथ से पिस्तौल ले ली। आनंदमयी ने जरा भी प्रतिवाद नहीं किया। उसने शोभा को अपने हाथ से इस तरह पिस्तौल ले लेने दिया, जैसे वह चाहती रही हो कि कोई आवे, और उसके हाथ से पिस्तौल छीन ले।

नंदलाल बोला—"शोभा बहन, यह अत्यंत गंभीर प्रश्न है। इस समय तुम यहाँ से जाओ।"

"लाओ, मेरी पिस्तौल। हर समय मजाक़ अच्छा नहीं।" आनंदमयी शोभा की ओर झपटी। उधर से रसिकेंद्र आ रहा था। शोभा ने उसे देखा न था, अतएव वह बिना लक्ष्य के भरी पिस्तौल दाग रही थी, जिससे उसकी गोलियाँ खाली हो जायँ, और इन क्रांतिकारियों का यह खतरनाक प्रेमाभिनय समाप्त हो।

"अच्छा, शोभा रानी पटाख़े छुड़ा रही हैं। यह किस खुशी में?" रसिकेंद्र बोला।

"पटाख़ों के धोखे में न रहना, यह पिस्तौल है।" शोभा ने रसिकेंद्र की ओर ख़ाली पिस्तौल को तानते हुए कहा।

"शोभा, बुरा न मानना, तुम्हारी तो चितवन ही मुझे स्वर्ग-धाम पहुँचा देने के लिये काफ़ी है। फिर भला, यह पिस्तौल मुझ पर क्यों तानती हो?" रसिकेंद्र ने और निकट आते हुए कहा।

"कैसा बदतमीज़ है यह।" आनंदमयी बोली।

"आनंदमयीजी, आज मैं तुम्हारी सब बातें सह लूँगा, चाहे जो कहो। क्योंकि मैं तुम्हें एक ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन में चलने के लिये आमंत्रित करने आया हूँ, और तुम्हें मेरा निमंत्रण स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

आनंदमयी यह सब सुनने के 'मूड' में नहीं थी। उसका हृदय क्षुब्ध था। बोली—"अपनी कुशल चाहते हो, तो अभी, इसी दम यहाँ से चले जाओ।"

"मैं स्वयं जल्दी में हूँ। मेरा निमंत्रण स्वीकार कर लो, बस, मैं चला।"

"तुम्हारा कवि-सम्मेलन गया चूल्हे-भाड़ में। मेरे पास इन फ़ालतू कामों के लिये ज़रा भी समय नहीं है।"

आनंदमयी आगे बढ़ी। जान पड़ा, सारा क्रोध रसिकेंद्र पर ही उतारेगी, और धक्के दे-देकर उसे वहाँ से हटा देगी।

शोभा ने बीच-बचाव किया—"आनंदमयी बहन, रसिकेंद्र को स्थिति का पता नहीं है। चलो, घर के भीतर बैठें। वहाँ इत्मीनान से बातें होंगी।"

और वह आनंदमयी का हाथ पकड़कर स्नेह से उसे घर के अंदर ले जाने लगी।

नंदलाल ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। उसे देखकर शोभा बोली—"नंदलालजी, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए। मेरे घर पर चलिए, अभी मैं आती हूँ।"

"और मुझे भी तो कुछ आदेश दीजिए, शोभाजी।" रसिकेंद्र ने कहा।

"अरे तुम! चले आओ मेरे पीछे।" शोभा विचित्र ढंग से कहती हुई, आनंदमयी को ढकेलती हुई अंदर ले जाने लगी। रसिकेंद्र भी पीछे-पीछे चला।

"ख़बरदार, जो मेरे घर के अंदर पैर रक्खा, लुक्कड़ कहीं के।" आनंदमयी ने क्रुद्ध सिंहनी-सी रसिकेंद्र की ओर घूरकर देखते हुए कहा।

रसिकेंद्र के बदन में जैसे आग लग गई। पूरे जोर से चिल्ला-कर बोला—"मैं और सब सह सकता हूँ। पर मुझे यह बर्दाश्त नहीं कि कोई मुझे तुक्कड़ कहे। रस-शृंगार जाननेवाला इस समय भारत का मैं एकमात्र कवि हूँ। इस १५ अगस्त को दिल्ली के लाल क़िले में जो ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन होने जा रहा है, उसमें सभापति के आसन पर बैठने के लिये मैं ही आमंत्रित किया गया हूँ। मैं तो तुम्हें आमंत्रित करने आया था कि मेरे परिचितों में हो, तुम्हारा भी कुछ महत्त्व बढ़ाऊँ। नहीं मानती हो, तो लो, जाता हूँ। मुझे क्या? श्रीमती सुलोचनादेवी जायँगी, उनकी स्वीकृति ले आया हूँ। तुम उनके पैर की धोवन भी नहीं हो, तुम्हें पूछता कौन है?" रसिकेंद्र इसी प्रकार बड़बड़ाता चला जा रहा था।

आनंदमयी शोभा के साथ अंदर चली गई, और भीतर से किवाड़ बंद कर लिए।

नंदलाल अब भी बाहर खड़ा था। उसे संबोधित करके रसि-केंद्र कहने लगा—"क्यों नंदलालजी, आप ही बताइए, मेरा क्या अपराध है?"

"कुछ नहीं।" कहता हुआ नंदलाल एक ओर को चल पड़ा। जैसे उसके सामने कोई ध्येय ही न हो।

रसिकेंद्र का क्रोध शांत न हुआ था। किवाड़े पर अपने हाथ से चोट करता हुआ बोला—"मैं यहाँ बैठता हूँ, और तब तक बिना कुछ खाए-पिए बैठा रहूँगा, जब तक आनंदमयीजी स्वयं

द्वार खोलकर अपने शब्द वापस न लेंगी, और मुझसे माफ़ी न माँगेंगी।" और वह ज़ोर-ज़ोर से स्वरचित कवित्त और सवैए गाने लगा।

आनंदमयी ने कहा—"शोभा, इस तुक्कड़ को मुँह लगाने की अच्छी सज़ा पा रहे हैं हम लोग। कितना बड़ा मूर्ख है यह ?"

"चाहे जो कहो बहन, पर एक बात तो माननी ही पड़ेगी कि इसका जन-समाज में आदर है। जिस कवि-सम्मेलन में पहुँच जाता है, हज़ारों की भीड़ लग जाती है।"

"पर इसकी कविता में क्या है; सिवा बेहूदी बातों के ?"

"यह ठीक है, पर यह तो जनता की रुचि है।"

"जनता की रुचि बदलनी होगी। हमें जन-साहित्य का सृजन करना होगा। पतनोन्मुख समाज की नग्न कामुकता का चित्रण साहित्य नहीं है। यह हमें जनता को बताना होगा।"

"पर यह तो तुम कवि-सम्मेलनों में उपस्थित होकर, अपनी आदर्श रचनाओं को सुनाकर ही कर सकती हो।"

आनंदमयी को लगा कि शोभा के कथन में कुछ तथ्य है। बोली—"अच्छा, उस तुक्कड़ से कहो कि इस समय जाय, मुझे उसका निमंत्रण स्वीकार है।"

"मेरी बात मानो।" शोभा ने कहा—"जिस वैवाहिक उलझन में तुम लोग पड़े हुए हो, उसकी गुत्थियाँ सुलझाने में इससे काफ़ी मदद मिल सकती है। युवकों और युवतियों के मनोभावों का अच्छा ज्ञान है इसे।"

"अच्छा, तो बुला लो। पर तुम जानना।"

"हाँ, हाँ।" कहती हुई शोभा दौड़ी गई, और रसिकेंद्र को किसी तरह चुप कराकर अंदर ले आई। रसिकेंद्र ने विजेता की भाँति प्रवेश किया, और एक गद्दीदार कुर्सी पर बैठकर आनंदमयी के कमरे की सजावट देखने लगा।

आनंदमयी ने कहा—"शोभा, सुनो। मेरी समस्या बिलकुल पेचीदा नहीं है। नंदलाल और मैं, दोनो इस प्रतिज्ञा से बँधे हैं कि भारत के स्वाधीन होने पर हम परस्पर विवाह करेंगे। यह प्रतिज्ञा करते समय नंदलाल बच्चा नहीं था, उसे उसी समय कहना चाहिए था, यह प्रश्न मेरे पिता की स्वीकृति पर निर्भर है। मेरे भी माता-पिता हैं। पर मैं उनकी स्वीकृति की परवा नहीं करती, और वे भी मेरे मामले में दखल नहीं देना चाहते। पर नंदलाल का पिता रूढ़िवादी है, और नंदलाल उसकी भक्ति से आक्रांत। सो उसने मेरे साथ की गई प्रतिज्ञा के होते हुए भी अपने पिता के दबाव के कारण सुलोचना से विवाह कर लिया, और मुझे कहीं का न रक्खा।"

"यहाँ तक तो हो गया, पर अब क्या हो?"

"वही तो कहने जा रही हूँ। नंदलाल चाहता है कि सुलोचना भी उसकी पत्नी बनी रहे और मैं भी बनी रहूँ। पिता की मृत्यु के बाद सब ठीक हो जायगा।"

"एक सूरत तो यह भी है?"

"क्या कहती हो शोभा! क्या आज के युग में किसी शिक्षिता

नारी के लिये यह उचित है कि वह किसी ऐसे पुरुष को अपना जीवन-सहचर बनावे, जिसके एक पत्नी और मौजूद हो।"

"तो मत बनाओ।" शोभा ने मुस्किराते हुए कहा।

"यही मेरा तुम लोगों से तीव्र मतभेद है।" आनंदमयी ने कहा—"मैं नंदलाल को इस मामले में क्षमा नहीं कर सकती। यदि उसके पिता की टेक है कि वह अपने बेटे को अपने मन की बहू देगा, तो मेरी भी टेक है कि उसके बेटे को मेरे साथ किए गए वादे को निभाना पड़ेगा। नंदलाल सुलोचना को छोड़े, और मेरा पति बनकर रहे। यदि इस प्रकार वह रहने को तैयार नहीं है, तो मैं उसे जीवित नहीं रहने दे सकती। मैं कोई खिलौना नहीं हूँ कि उसके हाथ में पड़ गई हूँ।"

"एक पुरुष के दो पत्नियाँ हो सकती हैं। यह कोई नई बात नहीं है। सनातन काल से चला आया है।" रसिकेंद्र ने कहा।

"चुप जनखे!" आनंदमयी गरजी—"यह इस युग में न होगा। इस युग की नारी यह कदापि बर्दाश्त न करेगी। इस पर मैं कदापि समझौता करने को तैयार नहीं हूँ।"

रसिकेंद्र अपने लिये जनखे शब्द का प्रयोग सुनकर आग-बबूला हो उठा, और उत्तर देने के लिये उसने जैसे ही मुँह खोला, शोभा ने अपना पंजा उसके मुँह पर लगाकर कहा—"मित्रवर, अब मत बोलो। तुम यह घोषित कर चुके हो कि मुझे तुक्कड़ मत कहो और चाहे जो कहो। सो आनंदमयीजी ने तुम्हारे लिये यह नया शब्द चुना है। बस, अब बोलो मत।"

शोभा के हाथ का मधुर स्पर्श पाकर रसिकेंद्र का क्रोध शांत पड़ गया, और वह चुप हो गया।

आनंदमयी ने कहा—"तुम नंदलाल से यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दो कि उसे अपना वादा पूरा करना पड़ेगा।"

"परंतु आधुनिक युग में तलाक़ भी तो है। यदि वह तुम्हारे आदर्शों के अनुरूप नहीं है, तो उसे तलाक़ दे सकती हो। किसी तरह यह क़िस्सा ख़त्म करो।"

"क्यों रसिकेंद्रजी !" शोभा ने कहा।

रसिकेंद्र ने कहा—"मेरी तो यह सुनती ही नहीं है। पर सुनें या न सुनें। काव्य-शास्त्र के अनुसार अब यह सह-नायिका हैं। इन्हें तो केवल इतनी ही चिंता करनी चाहिए कि नायक अपने अनुकूल बना रहे। पर यह तो घातक मान ठाने हुए हैं। मान यह जनावें, मानिनी नायिका के लिये मान जनाना उचित है।"

आनंदमयी कुछ कहने ही जा रही थी कि शोभा ने उसे रोका—"बहन, हर्ज क्या है ? कुछ इनकी भी सुन लीजिए।"

रसिकेंद्र कहता गया—"मुझे तो इस समय मतिराम का एक सवैया याद आ रहा है।"

"सवैया और दोहा मैं बहुत सुन चुकी हूँ। कुछ काम की बात हो, तो कहो, वर्ना चुप रहो।"

"काम की ही बात कहता हूँ। आप यही चाहती हैं न कि

नंदलाल एकमात्र आपका होकर रहे, और सुलोचना को छोड़ दे ?"

"हाँ।"

"इसके लिये तीन उपाय हो सकते हैं, चौथा नहीं।"

"बताइए वे तीनों उपाय।"

"पहला यह कि आप और नंदलाल, दोनों यहाँ से भागकर किसी ऐसे अज्ञात स्थान को चले जायँ, जहाँ सुलोचना की पहुँच न हो।"

"इसके लिये मैं तैयार नहीं हूँ।"

तो दूसरा उपाय यह है कि आप धैर्य से उस दिन की प्रतीक्षा करें, जब नंदलाल के पिता इस लोक में न रहें, और वह पूर्ण स्वतंत्र हो जाय।"

"इसके लिये भी मैं तैयार नहीं हूँ।"

"तो तीसरा उपाय यह है कि आप सुलोचना और उसके ससुर, दोनों को जहर दे दें।"

"हाँ, यह कर सकती हूँ।"

आनंदमयी के मुख से ऐसा वाक्य सुनकर रसिकेंद्र को क्रोध आ गया। बोला—"तो फिर आप नंदलाल को नहीं पा सकतीं। यानी उसकी एकमात्र पत्नी का पद नहीं पा सकतीं। यह ध्रुव सत्य है। ज्येष्ठा या कनिष्ठिका का ही पद आपको मिल सकता है। सो भी तभी तक, जब तक आप इसके लिये प्रयत्नशील रहें। यथा—

बरनत ज्येष्ठ - कनिष्ठिका, जहँ द्वै ब्याही नारि ;
प्रथम पियारी, दूसरी घटि प्यारी निर्धारि।"

"अच्छा, तो सुनो, कविराज ! तुम नंदलाल के पिता से जाकर कहो कि यदि उन्होंने मेरी और नंदलाल की शादी के लिये अपनी स्वीकृति न दी, और सुलोचना को न छोड़ा, तो उन्हें अपने बेटे के जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। बस, तुम मेरा यह संदेश ज़रूर उनसे कह दो।"

रसिकेंद्र को दिल्ली-सम्मेलन का स्मरण हो आया। बोला—"ख़ैर, इस अवसर पर मैं आपको नाराज़ नहीं करना चाहता आनंदमयीजी ! मैं अवश्य कह दूँगा। परंतु पहले तुम वादा करो कि दिल्लीवाले कवि-सम्मेलन में चलोगी।"

"हाँ, भाई, चलूँगी।"

"बस, तो मैं जाता हूँ।" कहता हुआ रसिकेंद्र उठा और बोला—"शोभा रानी, चलो, तुम भी चलती हो ?"

"तुम्हारे साथ कोई भली स्त्री अकेली कहीं जा सकती है।" शोभा खिलखिलाकर ज़ोर से हँसी।

रसिकेंद्र बोला—"शोभाजी, आपको मैंने छोड़ रक्खा है। पर नहीं मानती हैं, तो लीजिए, अभी एक छंद बनाता हूँ।"

"अच्छा भाई, ठहरो, चलती हूँ।" शोभा मुस्किराई।

"नहीं, मैं स्वयं तुम जैसी स्त्रियों से अपनी रक्षा चाहता हूँ।" कहता हुआ रसिकेंद्र तेज़ी से निकल गया।

शोभा ने कहा--"देखो आनंदमयी बहन, नंदलालजी बेबस हैं। उन पर आज मुझे बड़ी दया आई। आखिर तो आपने उन्हें अपना पति माना है, तब उन्हें इस सीमा तक न झुकाओ कि तुम्हारा उनका सदा के लिये वियोग हो जाय। उनसे भूल हुई। भूल को वह स्वीकार भी करते हैं। तब उन्हें क्षमा करो।"

"सोचूँगी इस पर।" आनंदमयी ने कहा—"पर शोभा, बात बिगड़ चुकी है, और जो बात बिगड़ चुकी है, वह अच्छी तरह बिगड़े, इसी में मुझे संतोष होगा। पर आज के लिये मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूँ कि तुमने आकर एक भयानक स्थिति को टाल दिया, और मुझे कुछ सोचने का मौक़ा दिया।"

आनंदमयी की आँखों में आँसू छलछला आए। "कैसे हैं आज के नवयुवक, जो हर किसी स्त्री से प्रेम करने को तैयार हो जाते हैं। पर जब उस प्रेम को निभाने का समय आता है, तब बग़लें झाँकने लगते हैं।" उसने बड़ी कठिनाई से इतना कहा, और सिसकने लगी।

शोभा ने देखा, यह स्त्री बाहर से जैसी कठोर दिखाई पड़ती है, वैसी वास्तव में नहीं है। उसके हृदय में आनंदमयी के प्रति गहरी समवेदना उमड़ आई, और उसके भी नेत्र सजल हो उठे।

उसी समय बाहर से द्वार खुला। दोनो ने देखा, नंदलाल अत्यंत गंभीर मुद्रा में उपस्थित है, और कह रहा है—"आनंद-मयी, जो कुछ संकोच-वश मुझसे हो गया, उसके लिये मुझे

बड़ा खेद है, और तुम्हारे प्रति जो अन्याय कर बैठा हूँ, उसका वास्तव में जो भी दंड भोगूँ, थोड़ा है। अतएव यह लो...।" यह कहते हुए उसने आनंदमयी के सामने एक पर्चा फेंक दिया, "और यह देखो!" उसने अपने चौड़े मस्तक पर पिस्तौल तानी। "मैं तुम्हारे सामने आत्महत्या करता हूँ। इस पर्चे में लिखा है कि मैं आत्महत्या कर रहा हूँ, जिससे मेरे पिता या कोई तुम्हें इस अपराध में गिरफ्तार न करावें।"

"हैं! हैं! यह क्या?" कहते हुए दौड़कर शोभा ने उसकी हाथ में दृढ़ता से पकड़ी हुई पिस्तौल का मुँह दूसरी ओर कर दिया। तभी आनंदमयी भी वहाँ आ पहुँची, और अपने दाँतों से उसकी उँगलियों पर इस जोर से काटा कि पिस्तौल जमीन पर गिर पड़ी। आनंदमयी बोली—'मालूम हो गया कि तुम कैसे क्रांतिकारी हो। मेरी फ़िकर मत करो, मरना है, तो अपने बाप के सामने जाकर मरो, और यह पर्चा भी उसी को दो।"

आनंदमयी ने ग़ुस्से से उसे ढकेलकर घर के बाहर कर दिया, और भीतर से किवाड़े बंद कर लिए।

---

(६)

कवि रसिकेंद्र को आज अनुभव हो रहा था कि वह भी मनुष्य हैं। उनके पड़ोसियों में किसी की पदोन्नति होती थी, किसी को व्यापार में लाभ होता था, किसी के यहाँ बेटी-बेटा जन्म लेता था, और इन उपलक्षों में शंख-घड़ियाल बजते थे, और दावतें होती थीं। रसिकेंद्र इन सब चीज़ों से विरक्त थे। अनुराग भी उनमें कहाँ से उत्पन्न होता? अपने कवित्तों से अरसिकों को रिझाते-रिझाते वह थक जाते, तब कहीं पेट-भर भोजन की नौबत आती। पर आज उनके जीवन में अभूतपूर्व घड़ी उपस्थित थी।

समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया था कि भारत-सरकार की

ओर से उन्हें दिल्ली के लाल क़िले में राष्ट्र-कवि की उपाधि दी जायगी, और डेढ़ लाख नक़द रुपए प्रदान किए जायँगे। उनके पास चारों ओर से बधाई के तार और पत्र आ रहे थे, समाचार-पत्रों में उनके चित्र और चरित्र प्रकाशित हो रहे थे, समालोचकगण उनके बेतुके छंदों का नवीन-नवीन अर्थ पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहे थे।

वह हाथ में ऐसे ही समाचार-पत्रों का पुलिंदा लिए, इलाहाबाद-स्टेशन पर खड़े, दिल्ली जानेवाली डाक गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह चार घंटा पहले ही स्टेशन पर आ गए थे कि गाड़ी कहीं छूट न जाय।

उनके शरीर पर उनका पुराना जिरह-बख़्तर यानी वह झींगुरों के प्रबल आघातों का स्मरण दिलानेवाली पुरानी शेरवानी न थी। आज वह नवीन शेरवानी धारण किए थे, बढ़िया चूड़ीदार पाजामा था, और नवीन रीवाँ-नरेश द्वारा प्रदत्त नवीन केसरिया साफ़ा उनके सिर पर इस प्रकार शोभित हो रहा था, जैसे शेषनाग के फन पर पृथ्वी रक्खी हो। पैरों में दर्पण सी पॉलिश से चमचमाते हुए बहुमूल्य पेशावरी शू थे।

परतंत्रता के दिन बीत गए थे, और वह स्वाधीन भारत के कवि थे। मस्तक ऊँचा किए वह प्लेटफ़ॉर्म पर बड़े घमंड से क़दम रख रहे थे, और कभी धीरे-धीरे और कभी ज़ोर-ज़ोर से वह छंद गुनगुना रहे थे, जिसे वह दिल्ली के इस ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन में सुनाना चाहते थे।

उन्हें चिंता केवल एक बात की थी कि फ़र्स्ट क्लास का जो डिब्बा इलाहाबाद से डाक गाड़ी में जुड़नेवाला था, और जिसमें रसिकेंद्र तथा अन्य कवियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी, वह स्टेशन से दूर एक साइडिंग में खड़ा था। इतना बड़ा कवि चोर की तरह वहाँ साइडिंग में जाकर गाड़ी में सवार हो, यह उसका घोर अपमान था, जो रेलवे के अधिकारी कर रहे थे।

उसी समय उन्हें शोभा अपने पति और पुत्र के साथ आती दिखाई पड़ी। रंगीन बेल-बूटेदार साड़ी ऐसी दिखाई पड़ रही थी, मानो मानसरोवर की एक लहर अपने लाल कमलों और श्वेत हंसों की आभा-सहित स्टेशन पर आ गई हो। ऊँची एँड़ी के रंगीन सैंडिल, पाउडर से पुता चेहरा, लिपस्टिक से रँगे होंठ, मस्तक पर चमकती हुई टिकुली, शोभा शोभा ही थी।

"आज तुम कवयित्री प्रतीत होती हो।" रसिकेंद्र ने मुस्किराकर उसका स्वागत करते हुए कहा।

"और आज तुम भी तो कवि प्रतीत होते हो।" शोभा बोली।

"शोभा, तुम्हें हमारे डिब्बे में बैठना होगा। परंतु ये...।" रसिकेंद्र ने उसके पति और बेटे को देखते हुए कहा।

"चिंता मत करो। इन सबको सर्वेंट-क्लास में बैठाल दूँगी। जब तक हिंदू कोड बिल पास नहीं हो जाता, यह कलंक तो माथे पर लगा ही रहेगा।"

"न-जाने ससुरे क्यों देर कर रहे हैं।" रसिकेंद्र बोले।

"'''परंतु इस भाव में मत रहना कि पति को तलाक़ दोगी, तो मैं तुमसे शादी कर लूँगा।"

"पुनः शादी करने का तो मेरे पास प्रश्न ही नहीं है। परंतु यदि कभी उठा, तो रसिकेंद्र तुम! तुम अंतिम पुरुष होगे, जिसकी ओर मैं आँख उठाऊँगी।"

"अच्छा! तुम्हें अभी मेरी पद-मर्यादा का ज्ञान नहीं है। लो, ये समाचार-पत्र देखो।"

रसिकेंद्र शोभा को समाचार-पत्रों में प्रकाशित अपने चित्र और चरित्र दिखाने लगे।

शोभा बोली—"हाँ, जो तुमसे परिचित नहीं हैं, अब किसी हद तक तुम्हें ठिकाने का आदमी समझ सकते हैं।"

रसिकेंद्र का ध्यान दूसरी तरफ़ था, तभी शोभा के एक बच्चे ने उनके साफ़े का एक छोर पकड़ा।

साफ़ा कहीं बिगड़ न जाय, इस इरादे से वह धनुषाकार हो गए, और पुकार मचाई—"शोभा रानी, ज़रा मेरी सहायता करो।"

रसिकेंद्र ने ऐसी बेचैनी दिखाई, जैसे वह कोई बड़ी मछली हों, जो शिकारी की कटिया में फँस गई हो।

शोभा ने बच्चे को वक्र दृष्टि से देखा। बच्चा इतने ही में भय से काँप उठा। तब वह पति से बोली—"बड़े बदतमीज़ हो तुम! बच्चे को लेकर दूर नहीं खड़ा हुआ जाता।"

"शोभा, तुम इस बच्चे को अस्वीकार कर दो। घोषित कर

दो, यह तुम्हारा बच्चा नहीं है। और इन महाशय से कहो, इसे लेकर दूर जायँ।" रसिकेंद्र बड़बड़ाते चले जा रहे थे।

तभी प्लेटफ़ॉर्म पर कुमारी आनंदमयी पग-संचालन करती हुई दिखाई पड़ी। श्वेत और महीन खद्दर की सलवार, श्वेत दुपट्टा, श्वेत चप्पलें, ऊपर से झूलती हुई सघन काले केशों की युगल चोटियाँ बड़ी भली प्रतीत हो रही थीं।

आनंदमयी क्षण-भर को रसिकेंद्र के पास आकर खड़ी हुई, और फिर साइडिंग में, जहाँ फ़र्स्ट क्लास की सीटोंवाला वह डिब्बा लगा था, चली गई।

"बड़ा घमंड है इसको।" रसिकेंद्र ने कहा—"पर शोभा, इसका घमंड मैं दिल्ली में चूर करूँगा। इसे कविता सुनाने का अवसर नहीं दूँगा। कदापि नहीं, और तुम्हें बार-बार बुलवाऊँगा। तुम्हारी धूम बाँध दूँगा।"

"सुना है, भारत-सरकार में इन्हें कोई बहुत बड़ी नौकरी मिल गई है।" शोभा बोली।

"अच्छा।"

"हाँ।"

"कौन-से विभाग में?"

"कोई साहित्य और कला का केंद्र खुला है, उसी में।"

"तभी इतना घमंड है। तब तो शायद यह कवि-सम्मेलन में भी न आवे।" रसिकेंद्र को कुछ चिंता हुई, और उनके पाँव अनायास उस ओर पड़ने लगे, जिधर आनंदमयी गई थी।

शोभा ने अपने पति को अकेला पाकर कहा—"देखो, तुम बच्चे को लेकर वापस चले जाओ। तुम्हें साथ ले चलने में हमारी-तुम्हारी दोनों की बेइज्जती है।"

"मुझे तो कुछ नहीं, पर बच्चा रोएगा बहुत।" शोभा का पति दबी जबान से बोला।

"रोए, तो शैतान का गला दाब देना, समझे, जाओ।"

और शोभा रसिकेंद्र के पीछे-पीछे चली।

ये लोग डिब्बे के पास पहुँचे भी न थे कि एक एंजिन आया, और डिब्बे को जोड़कर चलता बना। अब ये स्टेशन की तरफ़ दौड़े। डिब्बे में आनंदमयी इन्हें बैठी दिखाई पड़ी। उसे पुकारकर रसिकेंद्र ने कहा—"आनंदमयीजी, जंजीर खींचो। चार घंटे पहले आए, तब भी जान पड़ता है, गाड़ी पर न चढ़ने पावेंगे।"

रेलवे का एक कुली बोला—"प्लेटफ़ॉर्म पर चलिए, डिब्बा वहीं आकर गाड़ी में जुड़ेगा।"

रसिकेंद्र प्लेटफ़ॉर्म की ओर दौड़े। पीछे से बाजार के एक परिचित व्यक्ति ने उन्हें पकड़ा—"ओहो, कविवर रसिकेंद्र हैं। भाई, एक छंद सुनाए जाओ। गाड़ी छूटने में अभी बहुत देर है।"

रसिकेंद्र यह बदतमीजी न सह सके। उसके मुँह पर एक थप्पड़ जमाकर बोले—"यह थप्पड़ छंद है। अभी एक ही से संतोष करो, वापस आने पर दिल खोलकर तुम्हें सुनाऊँगा।"

वह आदमी मुँह में पान भरे हुए था। वह सब-का-सब उसने

रसिकेंद्र की शेरवानी पर उगल दिया। बोला—"अच्छा, यह पीक-पदक लेते जाओ। लौटोगे, तब और दूँगा।"

शेरवानी पर पीक के लाल धब्बे देखे, तो रसिकेंद्र को लगा, जैसे उनकी छाती पर से रेल निकल गई हो। हाय! अब क्या हो? कहाँ सोचा था कि गाड़ी छूटेगी, तो इस शेरवानी को उतारकर रख देंगे, और जब दिल्ली-स्टेशन क़रीब आवेगा, तब फिर पहन लेंगे, और कहाँ इसकी यहीं गत बन गई।

उस बेहूदे आदमी पर ग़ुस्से से छंद बनाते हुए वह प्लेटफ़ॉर्म पर बढ़े जा रहे थे। तभी शोभा का पति वहाँ खड़ा मिला। वह भी नई और अच्छी शेरवानी पहने हुए था। बोला—"कविवर, उदास न हों, मैं अपनी यह शेरवानी आपको दे दूँगा।"

पीछे से शोभा गरजी—"नहीं, तुम दिल्ली नहीं चलोगे।"

अब की बार रसिकेंद्र ने उस उपेक्षित पति का पक्ष लिया, और सब लोग गाड़ी में सवार हुए। गाड़ी छूटने में अब भी काफ़ी देर थी।

तभी सब लोग क्या देखते हैं कि सुलोचना आ रही है, और उसके पीछे जलूस-सा बनाए सैकड़ों स्त्रियाँ चली आ रही हैं।

कई लड़कियों ने इधर उधर दौड़ने के बाद कहा—"दीदी, यह रही आपकी बर्थ।" सुलोचना शांत भाव से आकर डिब्बे के द्वार पर खड़ी हो गई। भीतर देखा, एक बर्थ पर आनंदमयी आसन जमाए थी। दूसरी ख़ाली थी। उस पर सुलोचना का नाम लिखा

था, पर रसिकेंद्र जमे थे। रसिकेंद्र ने यह देखा भी न था कि उनकी सीट कहाँ है।

लड़कियों ने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया, तब उन्होंने वह बर्थ खाली की, और दूसरे डिब्बे में आए।

अब सुलोचना अंदर घुसी। उस बर्थ पर उसने नंदलाल का बिस्तर लगा दिया। उनकी सब चीजें क़ायदे से सजाकर रख दीं।

आनंदमयी बोली—"अच्छा, नंदलाल जी भी चल रहे हैं।"

"जी।" सुलोचना बहुत गंभीर हो उठी।

आनंदमयी बोली—"तो यह ख़बर ग़लत है कि उन्होंने आत्महत्या कर ली है।"

"जी।"

तभी रसिकेंद्र को लिए हुए शोभा उस डिब्बे में आई। बोली—"हम लोग पास ही के डिब्बे में हैं। सोने के समय चले जायँगे, पर अभी तो गपशप करते चलें।"

"आइए!" आनंदमयी बोली।

वे लोग अंदर आ गए। पर सुलोचना ने नंदलाल के लिये जो बिस्तर लगाया था, उस पर उनका बैठने का साहस न हुआ। उसमें उन्हें एक विचित्र रहस्य प्रतीत हुआ।

डिब्बे में एक सीट और थी। उस पर एक अपरिचित व्यक्ति बैठा था। उसके पास रसिकेंद्र बैठे, और आनंदमयी के पास शोभा बैठी। सब लोग कौतूहल-पूर्वक सुलोचना की कार्य-प्रणाली देखने लगे।

सुलोचना ने अपने बैठने के लिये एक कुशासन निकाला, और उसे नंदलाल के बिस्तर के नीचे बिछा दिया। फिर गाड़ी के बाहर खड़ी भीड़ में से एक महिला के हाथ से एक सुंदर सुनहली चौखट में जड़ा हुआ एक फ़ोटो लिया, और उसे उस सीट पर बीचोबीच में खड़ा करके तकिए के सहारे रख दिया। फिर दूसरी स्त्रियों के हाथों से ताज़े फूलों की मालाएँ ले-लेकर उस चित्र को ढँकना शुरू किया, और स्टेशन 'सुलोचना की जय! सती की जय!' के विचित्र नारों से मुखरित हो उठा।

"यह हैं नंदलालजी?" आनंदमयी ने पूछा।

"जी।" सुलोचना ने उसी गंभीरता से उत्तर दिया, और वह कुशासन पर बैठकर उस चित्र को फूल-मालाओं से सजाने में लग गई।

गाड़ी छूटी, तब डिब्बे का सारा वातावरण एक विचित्र गंभीरता और रहस्य से पूर्ण दिखाई पड़ा।

"क्या नंदलालजी ने सचमुच आत्महत्या कर ली है?" शोभा बोली।

"कुछ कहा नहीं जा सकता।" रसिकेंद्र ने कहा।

यह सब देख और सुनकर आनंदमयी अपराधिनी-सी खिड़की के बाहर देखने लगी। गाड़ी दौड़ी जा रही थी। स्टेशन का कोलाहल पीछे छूटा जा रहा था, और बाहर की प्रकृति शांत रहस्यमयी परी के समान अपनी मुस्कान बिखेरती प्रतीत हो रही थी।

---

(१०)

डाक गाड़ी के इलाहाबाद-स्टेशन से छूटते ही यहाँ के एक असिस्टेंट स्टेशन-मास्टर ने, जो उस समय ड्यूटी पर थे, फतेहपुर के अपने मित्र स्टेशन-मास्टर से टेलीफोन पर इस प्रकार बातें कीं—

"मित्र, धन्य है महात्मा गांधी को, जिन्होंने भारत को स्वाधीन किया। परंतु स्वर्ग में उनकी आत्मा इस बात पर निश्चय ही आँसू बहाती होगी कि उनके अनुयायी, जो उनके नाम पर देश का शासन कर रहे हैं, भूखी, नंगी जनता को भोजन और वस्त्र देने के बजाय कला और संस्कृति की चर्चा कर रहे हैं।

उनका पेट भरा है न ! उन्हें रास-रंग सूझा है। और तो और, भारत का जो खाद्य-मंत्री है, वह इस समय सबसे अधिक कला-कला चिल्ला रहा है, और संभवतः उसी की प्रेरणा से इस वर्ष १५ अगस्त को दिल्ली के लाल क़िले में एक भारी कवि-सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमें कवि नामधारी हिंदोस्तान-भर के ठग और लंपट बुलाए गए हैं। रसिकेंद्र को तो आप जानते होंगे। अपना वही पुराना स्कूल का साथी, जो चरित्र-हीनता के कारण स्कूल से निकाल दिया गया था, उस सम्मेलन का सभापतित्व करने जा रहा है। फ़र्स्ट क्लास के यात्रियों में उसे देखना। ओफ़्! फ़र्स्ट क्लास की भी मिट्टी पलीत है।"

"आने दो ससुरे को। मैं यहाँ गाड़ी से नीचे खिंचवा लूँगा।" टेलीफ़ोन के उस छोर से आवाज़ आई।

"अरे, ऐसा मज़ाक़ मत करना। हम-तुम गधे-के-गधे रह गए, और वह आज भारत-विख्यात हो रहा है। १५ अगस्त को इसे दिल्ली के लाल क़िले में राष्ट्र-कवि घोषित किया जायगा।"

"राष्ट्र-कवि? और यह लंपट, मैं ज़रूर इसे गाड़ी से नीचे खींच लूँगा।" टेलीफ़ोन के दूसरे छोर से फिर आवाज़ आई।

"नहीं, नहीं। स्थिति को समझो। इसकी ख़ुशामद करके हम-तुम कुछ काम बना सकते हैं। रेलवे के मिनिस्टर से हमारी-तुम्हारी सिफ़ारिशें करके पदोन्नति करा सकता है। सो इससे अपना परिचय ताज़ा करना। और हाँ, इस गाड़ी में एक दर्शनीय नारी जा रही है, उसे देखना। शायद उसके पति ने उसे त्याग

दिया है। पर वह इतने पर भी उस पति का चित्र लिए फिरती है, और देवता के समान उसकी पूजा करती है। सुनते हैं, यह दिल्ली में हिंदू कोड बिल के विरुद्ध प्रदर्शन करेगी। पर भगवान् जाने, क्या बात है। खैर, तुम इसके दर्शन करना। आश्चर्य है, इन लंपटों के साथ ऐसी सती-साध्वी नारी कैसे जा रही है!"

"अच्छा, अच्छा।" दूसरे छोर से आवाज़ आई, और यह बातचीत समाप्त हुई।

गाड़ी फ़तेहपुर-स्टेशन पर पहुँची भी न थी कि वहाँ एक से दूसरे कान में सुलोचना की चर्चा फैलती चली गई, और स्टेशन पर इस अद्भुत नारी का दर्शन करनेवाले भक्तों की भीड़ लग गई। प्लेटफ़ॉर्म पर गाड़ी के आने से पहले ही 'पतिव्रत धर्म की जय! हिंदू कोड बिल वापस लो!' के नारे लगने लगे।

डाक गाड़ी फ़तेहपुर-स्टेशन पर ठीक समय पर ही पहुँची थी, तथापि प्रतीक्षा करनेवालों को ऐसा लग रहा था, जैसे वह बहुत लेट आई हो। सुलोचना ने हाथ जोड़कर, खिड़की के बाहर सिर निकालकर नारे लगानेवालों का अभिवादन किया, और आँखों में जल भरकर कहा—"आप लोग भगवान् से प्रार्थना करें कि मेरे पति जहाँ भी रहें, सुख से रहें। मुझे इतने ही में संतोष है कि उनका चित्र मेरे पास है। इस जन्म में नहीं, तो दूसरे जन्म में वह अवश्य मुझ पर सदय होंगे।"

"ओह! यह दूसरे जन्म में भी नंदलाल को पकड़े रहना चाहती है।" शोभा ने आनंदमयी के कान में कहा।

"कैसा पाखंड है हिंदू-धर्म में, जो दूसरे जन्म में मिलन की आशा दिलाकर स्त्रियों से पतियों की यह ग़ुलामी कराता है।" शोभा कहती गई।

आनंदमयी कुछ नहीं बोली। भयभीत हो उठी। उसे लगा कि यह सारा जन-समुदाय अगर जान पावे कि नंदलाल को इस स्त्री को छोड़ने के लिये उसी ने बाध्य किया है, तो शायद उस पर भूखे भेड़ियों-सा टूट पड़ेगा।

उधर रसिकेंद्र को यह सब देख-सुनकर बड़ा ग़ुस्सा आ रहा था। कहाँ वह सोचते थे कि हर स्टेशन पर जहाँ गाड़ी खड़ी होगी, एक छोटा-सा कवि-सम्मेलन हो जाया करेगा, कहाँ यह भीषण पाखंड-वाद शुरू हो गया। खिड़की से बाहर सिर निकालकर वह गरजे—

"सुलोचना साधारण नारी नहीं है। महान् कवयित्री भी है। दिल्ली के लाल क़िले में महान् ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन होने जा रहा है, जिसका सभापतित्व करने के लिये मैं आमंत्रित किया गया हूँ, उसी में शामिल होने के लिये सुलोचनादेवी भी ज रही हैं। वह मेरी शिष्या हैं। आप लोग इनकी कोई कविता सुनें।"

"हाँ, सुलोचनाजी, सुनाओ।" उन्होंने डिब्बे के भीतर मुँह करके कहा।

पर सुलोचना कुछ न बोली। पति का चित्र हाथ में लेकर उसी की ओर एकटक निहारने लगी।

तभी खिड़की के बाहर शोभा ने सिर निकालकर कहा—"एक बार बोलो, सती-धर्म की जय !"

रसिकेंद्र ने जनता को कुछ अपनी ओर आकृष्ट किया था। कुछ काव्य-चर्चा का अनुकूल अवसर आया था। पर शोभा ने विषय को बदलकर फिर वही वातावरण पैदा कर दिया, जो रसिकेंद्र को असह्य था। सो वह गुस्से में भरकर बोले—"सज्जनो ! इसकी बात पर ध्यान मत दीजिए। आपसे तो यह सती-धर्म की जय बुलवा रही है, पर स्वयं अपने पति और पुत्र को सर्वेंट-क्लास में बैठाल रक्खा है। इतना ही नहीं, मेरे कहने से उसे लाई हैं। मेरे-जैसा समझानेवाला न होता, तो यह उस बेचारे को हिंदू कोड बिल पास होने से पहले ही तलाक़ दे देतीं।"

"कहाँ बैठे हैं इनके पति ?" भीड़ में से आवाज आई।

"उधर सर्वेंट-क्लास में जाकर देखो।" रसिकेंद्र ने कहा।

भीड़ उधर को झुकी। पर इधर शोभा रसिकेंद्र के इस वाक्य-प्रहार से प्रताड़ित होकर बहुत ही व्यथित हो उठी। अपने दाँतों से अपने नीचे का होंठ चबाने लगी। रसिकेंद्र को लगा, जैसे वह उन्हीं को चबा रही है। बोले—

"शोभा रानी, बुरा मत मानना, मैंने भीड़ हटाने के ख़याल से ही ये बातें कही थीं।"

शोभा ने क्रोध-भरी दृष्टि से रसिकेंद्र की ओर देखा—"देखूँगी, तुम्हारे सभापतित्व में दिल्ली में कौन कविता-पाठ करता है ? मूर्ख कहीं के।"

रसिकेंद्र को अपनी भूल मालूम हुई। वह खिड़की के बाहर सिर निकालकर चिल्लाने लगे—"सज्जनो ! लौट आओ। मैंने जो कुछ कहा, वापस लेता हूँ। एक-एक शब्द वापस लेता हूँ। शोभा के पति वहाँ नहीं हैं। वहाँ उनका नौकर है। मैंने मज़ाक़ में कहा है। यह मेरी भाभी जो लगती हैं।"

इसी बीच में एंजिन ने सीटी दी, और गाड़ी चल पड़ी। स्टेशन पर फिर आवाज़ें उठने लगीं—"पतिव्रता की जय ! हिंदू कोड बिल वापस लो !" आदि।

रेलवे-कर्मचारियों ने टेलीफ़ोन पर एक दूसरे से कहकर दिल्ली तक सुलोचना को अपने पति का चित्र लेकर यात्रा करने की चर्चा पहुँचा दी, और हर स्टेशन पर उसके दर्शनों को हज़ारों की भीड़ जमा होने लगी।

डाक गाड़ी दिल्ली में सबेरे कोई ९ बजे पहुँचती थी। पर वहाँ के दैनिकों में यह समाचार बड़े विस्तार के साथ सबेरे ही प्रकाशित हो गया था। अतएव वहाँ जब गाड़ी पहुँची, प्लेटफ़ॉर्म पर कहीं तिल धरने की जगह नहीं थी। रेलवे-अधिकारियों को भीड़ का नियंत्रण करने के लिये विशेष पुलिस की व्यवस्था करनी पड़ी थी।

उस उमड़ते हुए जन-समूह को दर्शन देने के लिये जब सुलोचना पुष्प-मालाओं से आवेष्टित एक ऊँचे मंच पर खड़ी की गई, तब उसका हृदय उमड़ आया। वह बोली—"इतने हृदयों की सहानुभूति पाकर मैं अपने दुख को भूल गई हूँ। परंतु आप

लोग मुझे क्षमा करें, तो मैं कहूँ कि मैं सार्वजनिक चर्चा का विषय नहीं बनना चाहती। मैं अपने जीवन को उसी सीमा तक सार्थक समझती हूँ, जिस सीमा तक मैं अपने पति और परिवार को सब प्रकार से तुष्ट रख सकूँ, और उनमें वे प्रेरणाएँ भर सकूँ, जो उन्हें जीवन के संग्राम में सफल बनावें। अपने इस लक्ष्य पर पहुँचने में मैं असफल हुई हूँ।"

तभी मंच पर रसिकेंद्र जा पहुँचे। बोले—"हम लोग उस ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन के लिये आए हैं, जो आज लाल क़िले में होगा। लीजिए, अब आप लोग उसके मनोनीत सभापति का एक छंद सुनिए।" और वह उच्च स्वर में गाने लगे—

"हिंदू कोड बिल मिल ख़ाक में रहेगा, क्योंकि
व्यर्थ है तलाक़, तुष्ट हैं वे एक दूल्हे में;
साग के सदृश छील सिल पर पीस देंगी,
फूँक देंगी देवियाँ अवश्य इसे चूल्हे में।"

रसिकेंद्र अपना यह कवित्त पूरा भी न कर पाए थे कि चारों तरफ़ से 'वाह-वाह' की आवाज़ें आने लगीं, और इतना कोलाहल मचा कि कवित्त का अंतिम चरण वह पढ़ ही नहीं सके।

रसिकेंद्र को लगा कि उन्होंने मैदान मार लिया, और शोभा को अपनी कविता सुनाने के लिये पुकारा। शोभा रसिकेंद्र के प्रति अब भी ग़ुस्से से भरी हुई थी, तथापि वह मंच पर आई। रसिकेंद्र ने उसका परिचय कराया—"यह हिंदी की महान

कवयित्री शोभा हैं।" वह सोचने लगे कि आगे क्या कहें ? तभी शोभा बोली—

"और उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जब हिंदू कोड बिल पास होगा, और यह अपने पति को तलाक़ दे सकेंगी। तलाक़-विहीन विवाह गुलामी है, स्त्री के लिये बंधन है, वह स्वाधीनता चाहती है।"

रसिकेंद्र को लगा कि शोभा ने रंग में भंग कर दिया। यह जनता की रुचि नहीं पहचानती। बोले—"सज्जनो ! एक बात न भूलें। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह हिंदी की महान् कवयित्री हैं, जैसी मीरा थी, जिसने अपने पति को छोड़ दिया था। कवयित्रियाँ सती-धर्म का अपवाद होती हैं। और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि सती कभी कवयित्री नहीं हो सकती, और कवयित्री कभी सती नहीं हो सकती। सो शोभाजी सोच लें कि वह क्या हैं ? सती या कवयित्री।"

रसिकेंद्र की यह बकवास आनंदमयी को बहुत अखरी। उसने मंच पर चढ़कर रसिकेंद्र को डाँटा—"क्या बकवास लगा रक्खी है, तुक्कड़ कहीं के !" और माइक्रोफ़ोन अपने हाथ में लेकर बोली—"कवियों में साधारण शिष्टाचार का भी अभाव होता है। या यों कहिए कि वे बदतमीज़ होते हैं। रसिकेंद्र इसके नमूना हैं। हिंदू कोड बिल से हमसे इस समय कोई मतलब नहीं। इस समय तो हम यहाँ दूसरे ही काम से आए हैं। हममें हिंदू कोड बिल का समर्थक कोई नहीं। पर यदि आप समझते हों कि

रसिकेंद्रजी हैं, तो इन्हें ले जाइए, शहर में घुमाइए। पर हम लोगों को अपने स्थान पर जाने दीजिए।"

आनंदमयी की इस बात का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा, और यह तमाशा समाप्त हुआ। रसिकेंद्र और शोभा के बीच कटुता और बढ़ गई, और भीड़ के बीच से स्वयंसेवकों की सहायता से ये सब लोग किसी तरह स्टेशन के बाहर आए। बाहर एक सज्जित मोटर गाड़ी खड़ी थी। उस पर लोग रसिकेंद्र को जबरदस्ती बैठालकर प्रदर्शन करते हुए पार्लियामेंट-भवन तक ले गए, जहाँ पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी चलाई, और रसिकेंद्र को गिरफ्तार करके क़रीब के थाने में ले गए।

वहाँ रसिकेंद्र ने गिड़गिड़ाकर, हाथ जोड़कर पुलिस के अधिकारियों से कहना शुरू किया—"भाई, मुझे छोड़ दो, मैं तो राष्ट्रीय सरकार का कवि हूँ। लाल क़िले में आज जो कवि-सम्मेलन होनेवाला है, उसका सभापति हूँ। समय से पहले मुझे छोड़ दो। हे भगवान्, किस पापी का मुँह देखकर इलाहाबाद से चला था।"

"जरा अपनी वह कविता तो सुनाओ।" छोटे दारोग़ा साहब बोले।

"हाँ, सुनो।" रसिकेंद्र ने उच्च स्वर से गाना शुरू किया—

"हिंदू कोड बिल मिल ख़ाक में रहेगा, जो
कहेगा—'है तलाक़ व्यर्थ, तुष्ट एक दूल्हे में;'

साग के सदृश छील सिल पर पीस देंगी,

फूँक देंगी देवियाँ अवश्य उसे चूल्हे में।"

"अरे ! यह तो हिंदू कोड बिल का ज़बरदस्त समर्थन है।" एक अफ़सर बोला—"आश्चर्य है, इन मूर्ख प्रदर्शनकारियों ने इसका अर्थ भी समझने की चेष्टा नहीं की।"

"और मुझे यहाँ तक ऐसे पकड़ लाए, जैसे रावण सीता को हर ले गया था।" रसिकेंद्र ने कहा—"नाश हो उन राक्षसों का।"

---

(११)

दिल्ली के लाल क़िले के अंदर उस स्थान पर, जो मुग़ल बादशाहों के वैभव के दिनों में दरबार-ए-आम के नाम से प्रसिद्ध था, उस ऐतिहासिक कवि-सम्मेलन की व्यवस्था की गई थी, जिसके सभापति के आसन पर बैठने के लिये हमारे कविवर रसिकेंद्र प्रयाग से पधारे थे।

जिस उच्च मंच पर सम्राट् शाहजहाँ बैठा करता था, उसी पर एक सुसज्जित आसन पर कविवर रसिकेंद्र विराजमान थे। वह बार-बार परमात्मा को धन्यवाद दे रहे थे कि उसने पुलिसवालों को इतनी बुद्धि दे दी थी कि इस कवि को समय से पहले बंधन-

मुक्त कर दें। उनके इर्द-गिर्द भारत-सरकार के मंत्रीगण विराजमान थे। नीचे दिल्ली के गण्य-मान्य नागरिक पुरुष और स्त्रियाँ अप-टू डेट वेष-भूषा में बैठे उत्सुक नेत्रों से उनकी ओर निहार रहे थे। मंच के नीचे सबसे आगे की क़तार में बाहर के आमंत्रित मान्य व्यक्ति और कविगण बैठे थे। इसी क़तार में सुलोचना, शोभा, आनंदमयी आदि कवयित्रियाँ और कवि आदि बैठे थे।

कार्य-क्रम आरंभ होने ही जा रहा था कि बड़े ज़ोर का हल्ला शुरू हुआ। 'इनक़लाब ज़िंदाबाद' के नारों से सारा लाल क़िला गूँज उठा। उच्च आसन पर बैठे कविवर रसिकेंद्र ने देखा कि वे प्रसन्नवदना नारियाँ, जिन्हें वह स्वर्ग से उतरी अप्सराएँ समझ रहे थे, हाथों में झाड़ू लिए उन्हें बार-बार ऊँचा उठा रही और कुछ गा-सी रही हैं। सहसा उन्होंने देखा कि हाथों में फावड़े लिए हुए पुरुष भी उठ खड़े हुए हैं, और उन्हीं के स्वर में स्वर मिला रहे हैं।

क्रमशः वातावरण शांत होता प्रतीत हुआ, और एक अद्भुत नृत्य और गान आरंभ हुआ। गान के स्वर भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगे—

हम कवि हैं, हम कलाकार हैं,
भू को स्वर्ग बनाते हम;
श्रम जीवन का काव्य मनोहर,
श्रम से नहीं लजाते हम।

सहसा उन्होंने देखा कि सहस्रों झाड़ू वे स्त्रियाँ ऊपर को उठा रही हैं, जैसे सैनिक परेड के समय अपनी बंदूकें ऊपर उठाते हैं, और गा रही हैं—

झाड़ू है लेखनी हमारी,

फिर उन्होंने देखा कि वे उन्हीं झाड़ुओं से बटोरने का अभिनय करती हैं, और गाती हैं—

और धरातल काग़ज़ है ;

फिर उन्होंने देखा कि वे पुरुष अपने फावड़े ऊँचे किए हुए उच्च स्वर से उनके स्वर में स्वर मिला रहे हैं—

महाकाव्य की रचना होती—
निकल जिधर से जाते हम ।

यह एक अद्‌भुत नृत्य और गान था, जिससे सभा-भवन में अपने आप शांति छा गई। कविवर रसिकेंद्र के पास बैठे भारत-सरकार के गृह-मंत्री ने दिल्ली की पुलिस के उच्च अधिकारी को, जो वहाँ तैनात था, बुलाकर पूछा—"ये कौन हैं ?"

"श्रीमन् !" वह बोला—"जान पड़ता है, ये दिल्ली के मेहतर और मेहतरानियाँ हैं, सभ्य पुरुषों और नारियों का छद्म-वेष बनाकर यहाँ घुस आए हैं, और अपना प्रदर्शन कर रहे हैं।"

"ये क्या चाहते हैं ?"

"संभवतः शांतिमय प्रदर्शन करके चले जायँगे।"

"ये इतनी बड़ी संख्या में घुस कैसे आए ?"

अधिकारी ने कहा—"श्रीमन्, छद्म-वेष में। ५) से २५) तक के टिकट हैं, इन टिकटों को खरीदकर कोई भी आ सकता है।"

"और ये इतने झाड़ू और फावड़े कैसे लाए ?"

"स्त्रियाँ झाड़ुओं को बंद छातों के रूप में लाईं। देखिए न, वे रंगीन वस्त्र फ़र्श पर पड़े हैं, जिनमें ये झाड़ू लिपटे थे, और पुरुष फावड़ों को फ़ाइल-बैगों में लाए और उनकी मूठों को सुंदर छड़ियों के रूप में। देखिए न, वे फ़ाइल-बैगें फ़र्श पर बिखरी पड़ी हैं, और वे छड़ियाँ मूठों का काम दे रही हैं।"

"आश्चर्य है, इतना बड़ा आपका खुफ़िया-विभाग सोता रहा, और ये मेहतर इतनी बड़ी संख्या में इतना सामान लेकर आ धमके ! इस तरह तो हमारा कोई पड़ोसी दुश्मन चाहे, तो आपकी नाक के नीचे से इसी तरह नज़र बचाकर घुस आ सकता है, और दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर सकता है।"

"क़ब्ज़ा तो क्या कर सकता है, पर हाँ, थोड़ी-सी परेशानी बढ़ा सकता है।"

"क्या कहते हो, ये झाड़ू अगर बंदूक़ें होतीं, और इनके दिलों में हिंसा होती, तो क्या हममें से कोई जीवित बचता। यही तुम्हारा 'सेक्योरिटी मेजर' है। सरकार के मंत्रियों की तुम इसी प्रकार रक्षा करोगे ?"

पुलिस का वह ऑफ़िसर कुछ न बोला। किंकर्तव्य-विमूढ़-सा वहाँ चुपचाप खड़ा रहा।

तब गृह-मंत्री महोदय ने माइक्रोफ़ोन अपने हाथ में लिया,

और संयत भाषा में कहा—"सज्जनो! यह सभा जिस कार्य के लिये आयोजित हुई है, वह प्रारंभ होने जा रहा है। आप सबसे मेरी प्रार्थना है कि शांति-पूर्वक अपने-अपने स्थानों पर बैठें, और विघ्न न डालें। एक मिनट का समय मैं और देता हूँ। जो इस आदेश का पालन नहीं करेंगे, वे बल-पूर्वक सभा-भवन से निकाल दिए जायँगे।"

वह यह कहने भी न पाए थे कि सैकड़ों की संख्या में अति-रिक्त पुलिस और सैनिक अस्त्र-शस्त्र से सज्जित वहाँ आ धमके, और जान पड़ा कि प्रदर्शनकारियों पर गोली चलने में अब देर नहीं है।

परंतु प्रदर्शनकारियों ने जैसे यह सब न देखा हो और न सुना हो। वे अब भी उच्च स्वर से गा रहे थे—

झाड़ू है लेखनी हमारी,
और धरातल काग़ज़ है;
महाकाव्य की रचना होती—
निकल जिधर से जाते हम।

और नारे लगाने लगे। अंत में उन्होंने कहा—"नंदलाल की जय!" और फिर उसी प्रकार नाचने-गाने लगे।

नंदलाल नाम पर सुलोचना चौंकी, आनंदमयी चौंकी, रसि-केंद्र और शोभा चौंके। उधर गृह-मंत्री ने पुलिस के उच्च अधिकारी को आदेश दिया—"इस नंदलाल को तुरंत यहाँ उपस्थित करो।"

दूसरे ही क्षण दो पुलिस के सिपाहियों के बीच नंदलाल उस उच्च आसन पर चढ़ता दिखाई पड़ा। सुलोचना ने देखा, वही नंदलाल है, उसका स्वामी, सर्वस्व, जिसका चित्र लिए वह यहाँ आई है। दौड़कर उसके चरणों से लिपट गई—"स्वामी, मेरे स्वामी !"

"ठहरो !" नंदलाल ने आज्ञा के स्वर में कहा।

सुलोचना एक ओर खड़ी हो गई।

गृह-मंत्री महोदय ने पूछा—"आप कौन हैं जनाब ?"

"अनिमंत्रित, पर वास्तविक कवि।"

"आप चाहते क्या हैं ?"

"जनता और सरकार का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट कराना चाहता हूँ कि भारत का उद्धार इन कवि-सम्मेलनों, कलाकार-सम्मेलनों और सांस्कृतिक सभाओं के नाम पर पतनोन्मुख समाज के गलित अंगों का मान बढ़ाने से नहीं, प्रत्युत श्रमिकों के जो वास्तविक कलाकार हैं, उनके द्वारा ही हो सकता है।"

"नंदलालजी !" रसिकेंद्र विनय के स्वर में बोले—"विघ्न न करें। कवि-सम्मेलन होने दें।"

नंदलाल का ध्यान रसिकेंद्र की ओर गया। उसी क्षण उन्होंने देखा कि आनंदमयी गुस्से से वहाँ दाँत पीसती हुई आई, और बोली—"नंदलाल, तुम यहाँ कैसे ?"

नंदलाल अब की बार आनंदमयी से सहमा नहीं। झिझका

नहीं। धैर्य से बोला—"तुम्हारा कहना ही ठीक था आनंदमयी, मैं क्रांतिकारी नहीं, कायर था। वह कायरता अब दूर हो गई है, और अब मैं सच्चा क्रांतिकारी बन गया हूँ। हमारे समाज का सबसे दलित अंग मेहतर-वर्ग है। सो उनके बीच में रहकर उन्हीं को उठाने की चेष्टा कर रहा हूँ।"

"यह क्रांति नहीं, सिर पर स्वेच्छा से ली गई जिम्मेदारियों से पलायन है।"

"तुम्हें ऐसी राय रखने का हक है।"

"तो तुम मुझे पत्नी-रूप में ग्रहण करने को तैयार नहीं हो?"

"मैं तो सदैव तैयार हूँ। पर तुम स्वयं मुझसे भागती हो। चलो मेरे साथ, मेहतरों के बीच में रहें और काम करें।"

आनंदमयी क्रोध से लाल हो गई। अपने हैंडबैग से उसने वह सर्टिफिकेट निकाला, जो उसने अपने और नंदलाल के विवाह के संबंध में कलकत्ते में अदालत से प्राप्त किया था, और उसे सुलोचना के सामने फेंककर बोली—"लो, आज से मैं इस पुरुष का त्याग करती हूँ। तुम इस मेहतर के साथ सुख से मेहतरानी बनकर रहो।" और वह अपने स्थान पर आकर बैठ गई। सुलोचना ने उसे उठाकर क्षण-भर देखा, फिर टुकड़े-टुकड़े कर डाला, और दौड़कर नंदलाल के चरणों से लिपट गई—"चलो, मेरे स्वामी, मुझे अपने साथ ले चलो। स्वर्ग में, नरक में, जहाँ तुम चलो, तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।"

"ठहरो।" नंदलाल फिर आज्ञा के स्वर में बोला, और गृह-

मंत्री के कंधे पर हाथ रखकर उनके कान में कहा—"कम-से-कम एक घंटे के लिये आप अपने कवियों और कलाकारों-समेत यह स्थान खाली कर दें। हम यहाँ श्रमिक-सम्मेलन करेंगे।"

"नहीं, नियम और व्यवस्था की इस प्रकार की अवज्ञा मुझे सह्य न होगी। या तो तुम सब इसी समय यहाँ से शांति-पूर्वक चले जाओ, या शांति-पूर्वक बैठो। नहीं तो मैं तुम्हारी गिरफ़्तारी की आज्ञा निकालकर इन उपद्रवकारियों को बल-पूर्वक यहाँ से हटवा दूँगा।"

"चलो। मेरे स्वामी, यहाँ से चलो।" सुलोचना ने विनय के स्वर में कहा।

नंदलाल इस बार उसकी उपेक्षा न कर सका। न-जाने क्या सोचकर उसने कहा—"अच्छा, चलो।" और गृह-मंत्री के हाथ से माइक्रोफ़ोन लेकर चिल्लाया—"साथियो! हम जिस ध्येय से यहाँ आए थे, सफल हो गया। यानी हमने सरकार और जनता को बता दिया कि कला, साहित्य और संस्कृति की पुकार मचाने-वाले देश के शत्रु हैं, कम-से-कम इस समय तो अवश्य। यह बेवक़्त की सहनाई है। जनता भूखों मर रही है। अन्नपूर्णा भारत-वसुंधरा के पुत्रों और पुत्रियों को, जो अपने कृषि-कर्म से सारे संसार को खिला सकते हैं, आज भूखों मरना पड़े, और विदेशों से ग़ल्ला मँगाने की आवश्यकता पड़े, यह शर्म की बात है। इधर जो ध्यान नहीं देते और कला, साहित्य तथा संस्कृति की पुकार मचाते हैं, वे देश के शत्रु हैं। ऐसे व्यक्ति कदापि सरकार

नहीं चला सकते। आइए, हम श्रमिकों का संगठन करें, और इस सरकार को इसी चुनाव में बदल डालें।"

ज़ोर की करतल-ध्वनि हुई, और नंदलाल ने माइक्रोफ़ोन गृह-मंत्री को दे दिया। बोला—"लीजिए, अपना कवि-सम्मेलन कीजिए।" और चल पड़ा। उसके पीछे जो लोग वहाँ प्रदर्शन कर रहे थे, वे भी उसी प्रकार गाते और नारे लगाते चल पड़े।

मनुष्य जब तक अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पाता, तभी तक भीरु और कायर प्रतीत होता है। कर्तव्य निश्चित कर लेने पर और उस पथ पर बाधाओं की परवा न करके चल पड़ने पर वह वीर और योद्धा प्रतीत होने लगता है। श्रमिकों के आगे मस्तानी चाल से चलता हुआ नंदलाल आनंदमयी को फिर वैसा ही वीर, वैसा ही त्यागी, वैसा ही बलिदानी प्रतीत हुआ, जैसा संघर्ष के दिनों में प्रतीत होता था। उसे लगा कि नंदलाल ठीक रास्ते पर था, और वही भूल कर रही थी, वही उसको पथ-भ्रष्ट कर रही थी। एक विचित्र प्रकार की खीझ, आत्मग्लानि और पश्चात्ताप से वह सिहर उठी। दौड़ी हुई नंदलाल के पास पहुँची। बोली—"भाई नंदलाल, मुझे क्षमा करो। कर्तव्य जीवन-प्राण से भी बड़ी चीज़ है। समस्त प्रकार के सांसारिक सुख-भोग कर्तव्य की बलिवेदी पर चढ़ाए जा सकते हैं। अपने कर्तव्य पर अडिग रहकर तुमने अपनी ही नहीं, मेरी भी रक्षा की है। पिता की आज्ञा तुमने मानकर भूल नहीं की, विवाहिता पत्नी के

प्रति तुमने अपने कर्तव्य का ठीक ही निवाह किया है। और—भाभी सुलोचना!" वह उसके पैरों पर गिर पड़ी। "तुम्हारे निकट मेरा अपराध अक्षम्य है। मुझे क्षमा करो। किसी भी स्त्री के लिये जीवन में सबसे बड़ा पैशाचिक कार्य यही है कि वह किसी विवाहिता नारी के मार्ग में आए, उसके पति को उससे तोड़कर उसका जीवन कंटकमय बनाए। मैंने तुम्हारे साथ अपकार किया। पर तुमने बुरा नहीं माना। अपने धैर्य, त्याग, संयम से तुमने अपनी रक्षा की, और मेरी भी लाज बचाई।"

सुलोचना को और कुछ न सूझा। वह आनंदमयी को बल-पूर्वक उठाकर उससे लिपट गई, और फूट-फूटकर रोने लगी। जैसे हृदय में युगों का संचित संताप एकाएक बाँध तोड़कर बह निकला हो।

आनंदमयी ने उसे स्नेह से चुप कराते हुए कहा—"सुलोचने! तुम गृह-लक्ष्मी हो। भगवान् करें, तुम्हारी-जैसी नारियाँ घर-घर हों।"

इधर यह नाटक हो रहा था, उधर कवि-सम्मेलन आरंभ हो गया था। आगे बढ़ते हुए इस जलूस में रसिकेंद्र के क्रमशः मंद पड़ते हुए स्वर में यह छंद सुनाई पड़ रहा था—

"आदर मिला है कविता को आज भारत में,
ग़ारत हो बेड़ा बेइमान बकवादियों का।

आनंदमयी ने कहा—"रसिकेंद्र वास्तव में कवि है, तुक्कड़ नहीं।

हाय ! मैं उस बेचारे को व्यर्थ छेड़ती रही। नंदलाल ! उसकी इन पंक्तियों का मर्म तुमने समझा ?"

"समझाओ।"

"वह कहता है, कविता अर्थात् सुलोचना को आदर मिला है, और बकवादी कवियों का नाश हो।"

"हूँ। कवि-सम्मेलनवालों के लिये इस कविता का एक अर्थ है, हम सबके लिये दूसरा। बेशक बड़ा चतुर है वह।"

सुलोचना यह सब सुनती गद्गद होती चली जा रही थी। उसके मन में एक ही इच्छा अब शेष थी। कब घर पहुँचे और श्वशुर के चरणों पर मस्तक रक्खे। श्वशुर, जिसने अपने कुल की मर्यादा स्थिर रक्खी, श्वशुर, जिसने पुत्र-वधू को पुत्र से बढ़कर माना।

प्रेस और पुस्तकालय-योजना

प्रिय महोदय,

(१) हिंदी अब हमारी राष्ट्र-भाषा है। इसका प्रचार हमें तन, मन, धन से करना चाहिए।

(२) इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक ऐसे नगर और क़स्बे में, २५,००० से ज्यादा स्त्री-पुरुष और वृद्ध-बच्चे रहते हैं, एक पुस्तकालय (बुकडिपो) ज़रूर हो। इस बुकडिपो में भारत-भर की हिंदी की पुस्तकें रहें। साथ ही स्कूली किताबें, अँगरेज़ी की बिकनेवाली किताबें और काग़ज़ तथा स्टेशनरी रहे।

(३) जहाँ कहीं २५,००० व्यक्ति हों, वहाँ १०,००० रु० की पूँजी से एक बुकडिपो खोला जाय। जिन नगरों की १,००,००० से ज्यादा की जन-संख्या हो, वहाँ कई पुस्तकालय १०,०००)-१०,०००) की पूँजी से दूर, पर मशहूर बाज़ारों में खोले जायँ। २-४ हज़ार रुपए हम भी लगा सकते हैं। पर हमारी इच्छा है, वहीं के प्रतिष्ठित साहित्य-सेवी, हिंदी-प्रेमी और रईस, वकील,

डॉक्टर, अध्यापक वगैरा स्त्री-पुरुष आपस में यह रुपया इकट्ठा करें। मान लीजिए, कोई कंपनी १०,०००) की पूँजी से खोली गई है, तो उसमें १००)-१००) के १०० शेयर रहें। ये शेयर वहीं के निवासी आपस में ले लें। हमसे कहेंगे, तो हम भी कुछ शेयर ले लेंगे। पर काम वहीं के लोग डाइरेक्टर या संचालक रहकर करें। कोई हिंदी-प्रेमी चेयरमैन रहे, और कोई मंत्री या व्यवस्थापक।

(४) यह बुकडिपो लिमिटेड कंपनी या सहकारी संघ के रूप में चलाया जाय या कुछ व्यक्ति ही, जो हिंदी-सेवा करते हुए १२ प्रतिशत रुपया भी कमाना चाहें, साझेदारी के रूप में चलाएँ। अधिक-से-अधिक १,००,०००) की पूँजी से ही काम किया जाय। वैसे हिंदी-प्रेमी रईस तो अनेक ऐसे हैं, जो लाखों रुपया हिंदी-सेवा में, साहित्य-विकास में, लगाकर रुपया भी कमाना चाहेंगे।

(५) आवश्यकता होने पर वहाँ छोटा सा या बड़ा प्रेस भी कर लिया जाय, और साप्ताहिक या मासिक पत्रिका भी निकाली जाय। इसके लिये भी शेयर बेच दिए जायँ।

(६) आप कृपया अपने वहाँ ऐसी हिंदी-संस्था खोलना उचित समझें, तो हमें लिखें, हम आपकी पूरी सहायता करेंगे। जब कहेंगे, तो इस कार्य के लिये स्वयं आ जायँगे। १०००)-१०००) लगाकर १० हिंदी-प्रेमी या ५-५ हजार लगाकर २ ही सज्जन यह कार्य कर सकते हैं।

(७) पुस्तकालय के नाम—गंगा पुस्तकमाला-एजेंसी रहे, स्थान का नाम उसके पहले लगा दिया जाय, तो गंगा-पुस्तक-माला के प्रसिद्ध होने के कारण पुस्तकालय फ़ौरन् चलने लगेगा या जो नाम उपयुक्त आप लोग समझें, वह रख लें। यह आपकी मर्ज़ी पर है।

(८) यदि आपका या आपके किसी मित्र का बुकडिपो आपके क़स्बे या नगर में हो, तो उसे ही, यदि आप ठीक समझें, तो, औरों के शेयर लगवाकर बृहत् रूप दे दें।

इस विषय में हमसे जो सहयोग चाहें, लिखें।

भवदीय—
दुलारेलाल

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ